चांदी की रात

(उपन्यास)

कमल शुक्ल

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
रामकृष्ण पार्क (पार्क गूंगे नवाब) अमीनाबाद लखनऊ

- प्रकाशक

विनोद शर्मा

संचालक, भारतीय ग्रन्थमाला

गूंगे नवाब का पार्क, अमीनाबाद,

लखनऊ

- शाखा

निकट नाका हिंडोला, लखनऊ

- मूल्य

चार रुपये पचहत्तर पैसे

- प्रथम संस्करण

अक्तूबर १९६५

- मुद्रक

साथी प्रेस,

लखनऊ

प्रस्तुत कृति

'चांदी की रात' एक यथार्थवादी उपन्यास है। यह कृति आदर्शोन्मुखी होते हुये भी प्रगतिशील है। इसका कथानक समाज के उस मर्म को छूता है जहां मर्यादा अपनी सीमा का उल्लंघन करती है। किन्तु काली घटा में चांद निकलता है पुरातन अर्वाचीन बनता है। यह कृति हमें वह दर्पण दिखलाती है जहां अमावस की रात में पूर्णिमा का चांद चमकता है।

आचार्य विनोबा भावे की डाकुओं के प्रति आत्मसमर्पण वाली नीति इसका आधार है। डाकू आत्मसमर्पण करके किस तरह दण्ड का भागी बनता है और फिर वह चमकता है सूरज बन कर। पुरानी दुनिया नई हो जाती है। लोग बदल जाते हैं ऐसे कि वे नये युग के नये प्रतीक लगते हैं। इस कृति में श्रमदान की सार्थकता पर भी जोर दिया गया है इसमें सहयोग और सहकारिता के भी साक्षात दर्शन होते हैं। यह उपन्यास ही नहीं आत्मनिर्भरता की वह सीढ़ी है जिस पर चढ़ कर हम सफलता को सहज ही छू सकते हैं।

'चांदी की रात' एक ऐसा ही कथाचित्र है जिसमें धरती मुस्कराती है और जनता गीत गाती है। यह कृति सहयोग के सागर की वह कमलिनी है जो नित्य नये रंगों में खिलती है।

कमल शुक्ल

एम ५७, किदवई नगर
कानपुर
१५-१०-६५

१

गाँव का कच्चा घर सवेरे की सफेदी में नहा उजला हो गया था। इसके बाद पिंडोर से पुती रुपहली दीवालों पर अब सूरज की सुनहली किरणें पड़ीं तो उसमें निखार आ गया। कुमारी सोकर उठ चुकी थी। वह आँगन बुहार नित्य-कर्म से निवृत होने लगी। आँगन में गौरइयाँ चीं-चीं करती हुई फुदक रही थीं और धूप धीरे-धीरे उतर रही थी छज्जे से दीवानों पर, तभी मुँड़ेर पर आ एक कौआ काँव-काँव करने लगा। कुमारी की निगाह ऊपर उठी। वह सोचने लगी कि मेरा तो भाग्य फूट चुका है, मेरे घर कौन आयेगा। जा, कागा उड़ जा। मैं पाँच साल से निर्वासिता हूँ। मेरे पति ने मुझे त्याग दिया। काश ! वे दिन भूल पाती जब मैं दुलहिन बनी थी।

और फिर कुमारी अतीत की दुनिया में पहुंच गयी। आँगन में मण्डप गड़ा था। बाहर नौबत बज गयी थी और भीतर शहनाई। भाँवरें पड़ीं। वह पराई हो गई। बूढ़ी विधवा माँ खूब रोयी। वह निपट अकेली थी। उसके आँसू बाढ़ बन रहे थे। षोड़श वर्षीया इकलौती कुमारी ससुराल जा रही थी डोली पर बैठी। गाँव गोपालपुर में उसे पति का असीम प्यार मिला, सास का दुलार और ससुर का लाड़। वह फूली न समायी, धीरे-धीरे तीन साल बीत गये। पति अनिल ने एम० ए० करने के बाद लखनऊ में पेंट वार्निश की दूकान की। वह पत्नी को साथ ले जाना चाहता था; किन्तु कुमारी सास को छोड़ कर नहीं गयी। अनिल रुष्ट हुआ और इसी पर खीझ कर उसने दूसरा व्याह कर लिया। उसका नाम सावित्री था। वह पति के साथ लखनऊ में रहती और कुमारी गाँव में। एक दिन आना पड़ा कुमारी को अपने पीहर मदन गाँव क्योंकि अनिल की यह शर्त थी कि यदि कुमारी गाँव में रही तो मैं

नहीं रहूँगा। मैं उसका मुंह भी नहीं देखना चाहता हूँ। यहाँ जब वह आयी तो थोड़े दिन बाद ही माँ चल बसी। वह अकेली रह गयी। थोड़ी सी खेती थी, बटाई पर उठा दी। इस तरह अपना जीवन-निर्वाह करने लगी। तब से उसे ससुराल की कोई खबर नहीं मिली। न कोई बुलाने आया और न वह गयी। हाँ, इतना अवश्य सुनने को मिला कि नयी बहु सावित्री के पुत्र हुआ है। उसका नाम अशोक रक्खा गया है। पाँच साल से वह एकाकी जीवन व्यतीत कर रही है। उसके लिए उसका भविष्य अंधकारमय है।

पूस का महीना था। हवा ठन्डी बह रही थी। कुमारी स्नान कर चुकी थी। उसे जाड़ा लगा तो सीढ़ी लगा छत पर चढ़ गयी। साथ ही लेती गयी अनाज के कुछ दाने। वे छत पर बिखेर दिये। चिड़ियाँ आकर चुनने लगीं। वह देख रही थी गौरइयों को और सोच रही थी कि ये पक्षी स्वतंत्र हैं, आत्मनिर्भर। इनसे मनुष्य को सीखना चाहिए कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो। आत्मबल के बिना आदमी कुछ भी नहीं कर अकता। सहसा किसी ने नीचे से आवाज दी। उसने पुकारा……"दीदी, ओ दीदी।"

कुमारी चौंकी। वह उठ कर खड़ी हुयी और मुंड़ेर से झाँक कर नीचे देखने लगी। उसने देखा कि पड़ोस की हीरा मालिन खड़ी है। दरवाजे पर पर्दा पड़ी एक बैलगाड़ी खड़ी थी। उस पर से उतर रहा था एक वृद्ध आँखों पर चश्मा चढ़ाये। हीरा ने उसकी ओर इंगित कर सिर उठा कुमारी को बतलाया कि दीदी देखो, ये कौन आये हैं।

कुमारी ने गौर-पूर्वक देखा। वृद्ध कत्थई रँग का ऊनी कुरता तथा वैसे ही रँग की सदरी पहने हैं। उसकी धोती है श्वेत मरसराइज्ड की। उसके हाथ में एक छड़ी है जिसकी मूठ रुपहली है। वह पहचान नहीं पायी। नीचे आ किवाड़ खोलते ही उसने पहचाना कि अरे, ये तो रामदादा हैं। गोपालपुर से आये हैं। पलक मारते ही उसने लम्बा सा घूँघट खींच लिया और झुक कर आगन्तुक के पैर छूने लगी।

"सौभाग्यवती हो बहू!" यह कह वृद्ध कुमारी के सिर पर हाथ फेरने लगा।

"मुझे सौभाग्य के भार से न लादिये दादा। मैं अभागिन हूं, अभागिन। मेरा नसीब फूट गया।" यह कहते-कहते कुमारी का कण्ठ भर आया।

और रामदादा चारपाई पर बैठ गद्-गद् कण्ठ से कहने लगे—"अभागे वे होते हैं बहू, जो अपने को भाग्यशाली समझते हैं। तुम कुन्दन हो कुन्दन, एक दम खरा सोना। तुम हमारे कुल की लाज हो बहू, इसीलिये तुझे लेने आया हूँ। अनिल सख्त बीमार है। उसे डाक्टरों ने जवाब दे दिया है। पेचिश हुयी थी, उसी में निमोनियाँ हो गया। फेफड़ों में पानी भर गया। वह हाल बेहाल है।"

"दादा!" रोकर कुमारी ने कहा और रामबाबू के पैर पकड़ लिये।

रामबाबू ने उसे उठाया और फिर सिर पर हाथ फेरते हुये स्नेह-विगलित वाणी में बोले—"उठो बहू, दुख न करो। मेरी आत्मा कहती है तुम्हारे चलते ही अनिल अच्छा हो जायेगा। देर न करो, संकोच में मत पड़ो फौरन चल दो। ऐसे अवसर पर संकोच नहीं किया जाता। आदमी दुशमन के घर जाता है। मैं जानता हूं कि तुम इनकार नहीं करोगी, जरूर चलोगी। मैं…………।"

अभी रामदादा इतना ही कह पाये थे कि कुमारी बोल उठी—"आप आये हैं, मैं न जाऊँ, यह कैसे हो सकता है दादा; लेकिन यह जरूर कहूंगी कि उस घर में मेरे लिये स्थान नहीं है। खैर चलूंगी और देखकर लौट जाऊँगी। अरे बातों में लगी, आप को जलपान तक नहीं कराया। बैठो, गाय का दूध रक्खा है। थोड़ा हलुआ बना दूं। भोजन जल्दी ही तैयार हो जायेगा, खाकर चलिए।"

"कुछ भी बनाने की जरूरत नहीं बहू। बस चल दो।"

लेकिन कुमारी नहीं मानी। वह हलुआ बना लायी और रामदादा को खाना पड़ा। इसके बाद चलते-चलते कुमारी की रामबाबू से इस तरह बातें हुयीं। कुमारी ने कहा—"मेरी ससुराल तो उसी दिन छूट गयी थी जब वे दूसरी बहू ले आये। चल रही हूं लेकिन मन मंजूर नहीं करता। ईश्वर उन्हें (पति) नवजीवन दे। वे उठ कर खड़े हो जांय, मुझे यही खुशी होगी।"

रामबाबू कुमारी को समझाने लगे। वे शांत एवं गम्भीर स्वर में बोले—"तुम्हारा कोई दोष नहीं बहू, यह मैं जानता हूं। तुमने जितनी समायी की, कोई नहीं कर सकता। समायी का फल मीठा होता है। तुम्हें तुम्हारी समायी और धीरज का फल जरूर मिलेगा। बहू तुम मेरी ही दृष्टि में नहीं; बल्कि पूरे गांव के लिये सराहनीय हो। तुम मलाल मत लाओ और यह सोच

कर चलो कि तुम मेरे साथ जा रही हो; दुलहिन बन कर ससुराल नहीं।"

इस तरह कुमारी रामदादा से तब तक बातों में लगी रही जब तक वे बाहर जाने को उद्यत नहीं हो गये। वह जब चली तो पड़ोसिनें जुट आयीं। कुमारी आँसू बहाती हुयी उससे कहने लगी—"ससुराल जा रही हूं। रामदादा खबर लाये हैं कि वे (पति) बीमार हैं। जल्दी ही लौटूंगी। मेरी राह देखना।"

और फिर बैलगाड़ी चल पड़ी अपने मन्तव्य की ओर। बैलों के गले में बँधी घन्टियाँ टुन-टुना कर बज उठीं, वे बजती रहीं, पीछे उड़ी धूल। ऐसा लगता था कि गाँव से चन्द्रिका जा रही है तभी छोड़ रही धूल के बादल। चाँद जहाँ जाता है वहीं चाँदनी छिटकती है।

●

२

मदन गांव से गोपालपुर लगभग सात मील था। बैलगाड़ी अब आधा रास्ता तय कर चुकी थी। राम बाबू कभी मौन हो जाते कभी कुछ बोल उठते; कभी-कभी कोचवान से बातें करने लगते जो बूढ़ा था सत्तर साल का। बार-बार खाँसता, उसे दमे की शिकायत थी। कुमारी ने एक बार कहा—"दादा मेरे बड़े भाग्य जो मेरी कुटिया में आप आये। आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर उठा ले मुझे। बस कुछ और नहीं चाहिए।"

"मौत की कामना क्यों करती हो बहू ? जीवन रोकर नहीं, हँसकर बिताने के लिये मिला है। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है। कली अधखिली है

वह फूल बनेगी। वहू निराशा की साँसे मत लो, तुम्हारे सौभाग्य का सूरज चमक रहा है।"

राम बाबू ने यह कहा और वे मन्द-मन्द मुसकराने लगे। कुमारी मौन रही थी, उस पर उनकी बातों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। गाड़ी के पहिये करते चरमर-चरमर चूं चररमरर। बैलों के कदम डगर नापते और धूल कहती कि जा रही माटी की गुड़िया। वह दुलहिन बनी है, पिया के देश जायेगी। अब दूसरा पहर समाप्त होने पर था। धूप लग रही थी अच्छी; क्योंकि ठन्डी हवा गात को अब भी छू रही थी। कुमारी देखती सरसों को, उसे सर्वत्र धरती हरे परिधान से मिलती। अरहर के पौधे हवा में झूमते। कहीं गेहूं-जौ लहलहाते और चने का साग खोंटते हुये आवृद्ध आवाल नजर आते। ऐसे ही मटर का साग भी दिखलाई देता, जिसमें बैंगनी फूल थे।

प्रकृति हँस रही थी जादूगरनी सी। आम, महुआ, नीम और बरगद आदि घने पेड़ कहते कि वे युग के गीत गाते हैं। वे प्रकृति के पूत हैं। उनकी छाया प्रिय लगती और कुमारी मन ही मन कहने लगती कि ऐसी जगह में ही लोग पड़ाव डालते हैं।

बैलगाड़ी गोपालपुर पहुँची तो दोपहर ढल आयी थी। दिन छोटा सा था इसी लिए लगता कि तीसरा पहर हो रहा है। गांव के घूरे पर हीरा काछी दूध लिए जा रहा था। उसने रामदादा से पाँय लागन की और बिना पूछे ही बतलाने लगा कि अनिल भइया की तबियत वैसी ही है। आप आ गये?

इससे कुमारी को सन्तोष हुआ और राम बाबू ने भी एक लम्बी साँस ली। गाड़ी आगे बढ़ी। अब कुमारी का घूंघट आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया था। गोविन्द बाबू की कोठी के सामने जाकर रुकी। पहले रामबाबू उतरे। तदुपरान्त कुमारी उतर कर भीतर गयी। उसने सास के पैर छुये और ससुर के चरणों पर भी गिरी। सावित्री को देखते ही गले से लगा लिया कुमारी ने और तीन वर्षीय अशोक को उठा लिया गोद में। ऐसा लग रहा था कि वह इस घर में बहुत दिन बाद आयी।

कुमारी पति के पास गयी तो उसने देखा कि उसके ससुर गोविन्द बाबू गीता का पाठ कर रहे हैं और दूसरे कोने में कुशासन पर बैठा है एक त्रिपुण्डधारी पंडित। वह महामृत्युन्जय का जाप कर रहा है। अनिल लेटा है। आँखे खोले वह जोर-जोर से सांस ले रहा है। कुमारी जब उसके निकट

सावित्री से कहा भी गया; लेकिन वह शहर नहीं गयी। अनिल अस्पताल पहुंच चुका था। उसे आक्सीजन दी जा रही थी। कुमारी पति के पैरों के पास अर्द्धविक्षिप्त सी बैठी थी। बाहर बेंच पर रामबाबू गोविन्द से कह रहे थे कि बड़ी बहू आ गयी, समझ लो अनिल को नयी जिन्दगी मिली। कैसी यह छोटी बहू ? इसे पति की बीमारी का तनिक भी ख्याल नहीं। जवानी में आदमी हो या औरत उसकी आँखों में एक नशा रहता है। उसे चाँदनी रात ही अच्छी लगती है। अमावस की रात नहीं भाती।

कुन्ती रामबाबू की बातें सुन रही थी। वह मूर्तिवत बैठी थी। अस्पताल का वातावरण शान्त था। चिकनी फर्श पर कोई भी चलता आहट नहीं होती। डेटाल की खुशबू सब जगह आती। सफेद वर्दी पहने नर्सें इधर से उधर डोलतीं। यह इमरजेंसी वार्ड था। सामने था आपरेशन थियेटर, इसी लिये वहाँ अधिक शान्ति थी। एक नर्स अनिल के पास बैठी उसकी गतिविधि लक्ष्य कर रही थी। वह कभी थर्मामीटर लगाती; कभी उसकी नब्ज देखती। जब ज्वर तेज हो जाता तो यूडीक्लोन की पट्टी रखने लगती। उसके माथे पर आक्सीजन-प्लान्ट फर्श पर रक्खा था। रबड़ की दो नलियाँ लगी थीं अनिल के नथुनों में। वह जोर-जोर से साँस ले रहा था।

रात किसी तरह बीत गयी थी। सवेरे से लेकर अभी तीसरे पहर तक अनिल की हालत सुधरती नजर आ रही थी। इधर यह स्थिति थी और उधर गाँव में चख-चख मची थी कि अनिल की नयी बहू बड़ी बेपीर है। वह अनिल के साथ अस्पताल नहीं गयी। दो-दो शादियाँ करने वालों का यही हाल होता है। बड़ी बहू कुमारी देवी है, देवी। उसी के पुण्य का प्रभाव है जो अनिल मौत से लड़ रहा है। वह जीत जायेगा और रोग हारेगा। अस्पताल में पड़ा अनिल रोग से लड़ रहा था। आक्सीजन दी जा रही थी। वह शिथिल हो गया था बहुत। करवट तक नहीं बदल पाता था। कुमारी की आँखें गीली रहतीं और रोता रहता उसका अन्त तक भी। वह कहती मन ही मन कि जिस नारी का संसार नहीं, वह हेय है स्वयं अपनी ही दृष्टि में। वह सौभाग्यवती नहीं, वह अभागी कहलाती है। कुमारी केवल तेईस-चौबीस वर्षीया युवती थी। वह शील की खान थी, रूप की रानी। वह जिन्दगी थी उस चमन की जहाँ बहार रहती; किन्तु भाग्य के थपेड़ों ने उसे राहें दिखायीं अंधी काली सूनी। वह शान्त हो गयी थी एकदम मानो जैसे प्रतिमा।

वह सादे लिवास में रहती और सौभाग्य के प्रतीक आभूषण अवश्य पहनती। जैसे पैरों में चाँदी के छोटे-छोटे विछिये, कमर में सोने की तगड़ी, हाथ में कंगन, गले में मंगल सूत्र, कानों में टाप्स, हाथ में अंगूठी जो पति ने उसे प्रथम भेंट में दी थी। वह काम से घबराती नहीं; वल्कि मानों काम उससे डरता था। वह जिस काम को हाथ में ले लेती उसे पूरा करके ही छोड़ती यह उसका स्वभाव था। वह गरीव वाप की वेटी थी। वह छोटी उमर में व्याह कर आयी थी; लेकिन उसका दिमाग आला नहीं हुआ। सरलता उसके साथ रही जो अन्त में उसकी प्रसंशा का प्रतीक वनी।

कुमारी निर्दोष थी। उसे अनिल ने इस लिये त्याग दिया था कि उसने सास-ससुर की सेवा को प्रधान माना और उसकी वात टाल दी कि वह शहर नहीं जायेगी। वह पतिपरायणा ही नहीं, धर्म से भी प्रेम करती थी। उसकी प्रवृत्तियाँ पाक थीं, पवित्र थीं। उसे ईश्वर पर आस्था थी। वह अपना समय कभी व्यर्थ नहीं जाने देती। प्रातः उठती वह। सवसे पहले भगवत भजन करती तत्पश्चात शौचादि से निवृत होती। जल-पान के वाद भोजन व्यवस्था फिर कुछ अध्ययन धार्मिक पुस्तकों का। तदुपरान्त तनिक विश्राम फिर पड़ोसियों का काम। किसी का कपड़ा सिलना, किसी का स्वेटर वुनना किसी का पत्र लिखना। वह गाँव के स्कूल से आठवीं कक्षा पास थी। वह दुःख-सुख में सहयोग देती इसीलिये प्रसंशा की पात्री थी। संध्या समय वह आरती करती तुलसी की और फिर अल्पाहार लेती। रात को फिर पाठ करती गीता या रामायण का और उसके वाद सो जाती। यहाँ अस्पताल में भी यंत्र चालित सी काम के समय वह प्रतीत होती। अनिल को स्वयं पश्चाताप था कि उसने कुमारी को अपने से व्यर्थ ही जुदा किया।

साँझ आयी थोड़ी ही देर वाद। वत्तियाँ विजली की जल उठीं। नर्स मुसकरायी। डाक्टर आकर देख गया था। हालत सुधर रही थी अनिल की। उसने आँखे खोल रक्खी थीं और सवको देख रहा था। रात भर कोई सोया नहीं। सवेरे अनिल ने स्वयं करवट वदली तो सन्तोष की साँस ली सवने और कुमारी का हृदय-पुष्प खिल उठा कि वादल घट रहे हैं। अव दूधिया चाँद निकलने वाला है। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। वह मगन थी इतनी कि यह तक भूल गयी कि यह दिन है या रात। वह मगन थी इतनी कि फूली नहीं समायी पड़ रही थी।

सवेरे अनिल ने माँ-बाप से बातें की। उसने कहा कि यह सब कुमारी का अभिशाप था पिता जी, जो मैं मौत के मुह में जाते-जाते बचा। आदमी को जब अपनी भूल ज्ञात होती है तो वह बहुत पछताता है। मैंने जिद्द की। उसका नतीजा भोग लिया। सावित्री मेरे लिये एक सिरदर्द बन गयी।

कुन्ती मुसकरायी। रामबाबू भी फूले नहीं समाये और कुमारी की पलकें थीं बन्द। वह मौन विनय कर रही थी ईश्वर से। प्रभात मुस्करा रहा था। चिड़ियाँ कर रहीं थी कलख गान और पेड़ों के पत्ते बाहर रहे थे झूम। जैसे जिन्दगी लौट आयी थी और मौज मना रही थी। वसंत का आगमन था, इसलिये मौसम सलोना और सुहावना लग रहा था। कुमारी के अन्त:करण से यह धुनि आ रही थी कि तुम्हारा सौभाग्य उदय हो आया है कुमारी। अब बीते दिन आयेंगे और बहारें वसंत के गीत गायेंगी।

•

४

अनिल मौत के खतरे से बाहर निकल चुका था। अब वह धीरे-धीरे कर रहा था स्वास्थ्यलाभ। वह उठ कर बैठता, सबसे बातें करता। उसे हल्का-हल्का ज्वर रहता और खाँसी आती थी। अभी उपचार चल रहा था। डाक्टर प्रसन्न थे कि उन्होंने एक बहुत चिन्ताजनक मरीज को बचा लिया। सब लोग लगभग एक सप्ताह तक अस्पताल में रहे।

जिस दिन अनिल चला अस्पताल से गोविन्द ने उस पर पैसे लुटाये। रामदादा भी बढ़े आगे। उन्होंने नोटों के हार पहनाये डाक्टरों को।

नर्सों को भी उपहार दिया, कम्पाउन्डर्स को इनाम । कुन्ती ने जमादारिन को अपना शाल दे दिया । वह आयी अपने परिवार के साथ स्टेशन तो मन ही मन ईश्वर से विनय कर रही थी कि दाता तुमने मेरी खूब सुनी । मेरी बिगड़ी बना दी । अब एक इच्छा और पूरी कर दें, बस यही भीख माँगती हूं । भगवान मेरी खाली झोली भरदे । मेरी बहू कुमारी पति के साथ रहे और सावित्री को भी सुबुद्धि दे कि वह राह-राह चले । अब मेरे आँगन में आनन्द बरसे, बादल झूम-झूम कर गायें ।

और झूम-झूम कर चल रहे थे बैल । ट्रेन से उतर कर सब बैलगाड़ी में बैठे थे । टुनटुना रही थीं घण्टियाँ और गाड़ी के पहिये करते चुरमुर और चररमरर । गोविन्द बाबू कहते कि अब गाँव आगया । थोड़ी ही दूर है । वहाँ राह देखी जा रही होगी । मैंने आदमी भेज दिया था ।

और राम बाबू मुसकरा रहे थे । वे कह रहे थे कि आज का दिन हम लोगों के लिये एक पवन तिथि है । कितने सौभाग्य की बात है कि हम अनिल को स्वस्थ देख रहे हैं । बहू कुमारी सती है । उसके सतीत्व का प्रभाव हमें प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है ।

और कुन्ती का ईश्वर भजन से जब ध्यान हटता तो वह सुनने लगती पति और जेठ की बातें । कुमारी मौन थी और देख रही थी मार्ग का दृश्य । उसके मन में कुछ रह-रह कर खटक जाता कि सावित्री ज्यों की त्यों होगी । उसके विचारों में तनिक भी अन्तर नहीं होगा ।

घर जब सामने आगया तो कुन्ती की आँखों में प्रसन्नता के आँसू भर आये । चौखट पर आ देहरी के पैर छुये फिर प्रविष्ट हुयी और आँगन में आ छोटी बहू को आवाज देने लगी । बहू, ओ बहू ! देखो अनिल आ गया । क्या कर रही हो, आओ ? लेकिन कुन्ती को कुछ भी जवाब नहीं मिला । वह बाहर चली आयी पुत्र को लेने । सावित्री ने सुना, सुन कर भी जवाब नहीं दिया । वह पड़ी रही अपने कमरे में, बाहर नहीं निकली ।

कुमारी भीतर आयी । वह सबसे पहिले पहुँची सावित्री के पास और उससे कहने लगी—"उठो रानी, देखो हमारा राजा आगया, चलो देखो ।

किन्तु सावित्री ने टाल दिया कि उसके सिर में दर्द है, तबियत ठीक नहीं। कुमारी चौंक गयी । उसने बुरा नहीं माना । वह चुपचाप चली गयी ।

अनिल ने भी जब अपने कमरे में सावित्री को नहीं देखा तो उसने

माँ से पूछ लिया—"माँ, क्या तुम्हारी छोटी बहू अपने पीहर चली गयी ?"

उत्तर में कुन्ती कुछ नहीं बोली। उसने मुंह लटका लिया था। तीसरा पहर हो रहा था। कुमारी आते ही कार्य-व्यस्त हो गयी। उसने जल्दी से पकौड़ियाँ बनायीं, पापड़ तले फिर चाय बना सबको जलपान कराया। वह एक कप चाय और एक प्लेट में पकौड़ियाँ सावित्री को भी दे आयी। सावित्री ने वह खा लिया पर तनी बैठी रही। जब रात हो गयी और दिये जल गये तो वह धीरे-धीरे पति के कमरे में गयी। उस समय अनिल एक मासिक पत्रिका पढ़ रहा था। सावित्री पास गयी और उसने पूछा—"अब कैसी तबियत है ? बहुत दिन लग गये ?"

"जल्दी आगये सरकार, दुश्मनों को सिर दर्द होने लगा। उनकी तबियत नासाज होगयी। क्या हाल है, वैद्य से कोई दवा मंगवाऊँ ?" अनिल ने यह कहा; लेकिन उसने पत्रिका से दृष्टि नहीं उठायी।

सावित्री जल भुन गयी। वह समझ गयी कि व्यंग उसी के लिये किया गया है इसीलिये कुछ नहीं बोली। पैर पटकती हुयी वहाँ से चली गयी। कुमारी ने उसका यह व्यापार देखा तो मन ही मन सोचने लगी कि सावित्री के विचार बहुत तंग हैं। वह सेवा भाव से बहुत दूर है इसीलिए उसमें सरलता नहीं है। उसे सद्बुद्धि आजाती और अपने नारी धर्म का पूर्णांश में पालन करती तो कितना अच्छा होता।

और फिर उस रात कुमारी देर तक पति की परिचर्या में लगी रही। उसने सास के भी पैर दाबे। सावित्री की लेती रही बलायें जब तक वह सो नहीं गयी। उसमें आज शक्ति का समुद्र लहरा रहा था। वह हो रही थी आत्मविभोर। आज उसकी दुनिया में जैसे बसन्त बहार आयी है। वह सोचती कि मैं सावित्री को सरलता की ओर मोड़ कर रहूंगी। यदि यह नहीं होता है तो घर का वातावरण कभी हँसी-खुशी में नहीं बदल सकता। माटी के वे घर सोने के कहलाते हैं। 'उनमें' स्वर्ग बसता है जहाँ सभ्यता साँस लेती है और मर्यादा मुसकराती है।

तारे अपनी मंजिल तय कर रहे थे। झिल्लियाँ झनकारती रहीं और झींगुर बजाते रहे अपनी-अपनी शहनाई। उनके स्वर कर रहे थे साँय-साँय और कुमारी कभी मुसकराती, कभी गम्भीर हो जाती, कभी आँखें खोल देखने लगती मुक्त गगन को और कभी मूंद लेती पलकें तब उसे गुमान आता

कि अभागिन नहीं; मैं सौभाग्यवती हूं। मुझे खोया प्यार मिला है। मैं बहुत खुश हूं। काश ! इस रात का सवेरा न हो और मैं ऐसी ही बावरी बनी रहूं।

●

५

माघ का महीना आरम्भ होते ही बागों में कोयल बोलने लगी। फूले खेत और फूल उठीं फुलवाड़ियाँ भी। भ्रमर गान करते और बहती बसंती मस्त पवन। गांव की जवानी झूम-झूम उठती। कुमारी अपने में प्रसन्न थी। वह सावित्री को विमुख नहीं होने देती, स्नेह-भाव से उसे हाथों-हाथ लिये रहती। सास को उठा कर पानी नहीं पीने देती और ससुर की सेवा इस भाव से करती कि मानों वह उसके कुल का पूज्य-देवता हो और आदि पुरुष। एक दिन प्रातः जब वह पति को चाय देने गयी तो बैठ गयी एक कुर्सी पर और ठुड्डी पर हाथ रख धीरे-धीरे कहने लगी—"अब तुम्हारी तबियत अच्छी है। सावित्री बहन यहां हैं ही; अगर आज्ञा हो तो मैं मदन गाँव लौट जाऊं।"

अनिल स्वस्थ हो चुका था। वह बैठा समाचार पत्र पढ़ रहा था। उसने अखबार पर से दृष्टि उठायी, पत्नी की ओर देखा फिर किंचित मुसकराहट के साथ सहज स्वर में बोला—"मदन गाँव, कितना प्यारा नाम है कुमारी। मैं ससुराल बहुत दिन से नहीं गया। चलो मैं भी घूम आऊं।"

"यह मेरा सौभाग्य है। चलो कल ही सवेरे हम लोग यहाँ से चल दें।"

कुमारी के मुंह से यह सुन अनिल केटली से कप में चाय डालता हुआ बोला—"और फिर वहीं से सीधे लखनऊ चल देंगे। अब तुम मदन गाँव

में नहीं रहोगी कुमारी। मुझे क्षमा कर दो कुमारी। मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया। समझ लो कुमारी कि अगर तुम साथ न रहीं तो मेरी साँसें सूनी हो जायेंगी।"

कुमारी के चेहरे का रंग उतर गया। वह आशंका से भरे व्यथित स्वर में कहने लगी—"मैं किसी का अधिकार नहीं छीनती लखनऊ में सावित्री बहन रहेंगी। मेरे लिए गाँव ही ठीक है। चलो, घूम फिर आओ, उसके बाद गांव आओ और सावित्री को लेकर लखनऊ जाओ। अपना धंधा-रोजगार देखो।"

"मैं जानता था कुमारी कि तुम यही कहोगी; लेकिन यह सब नहीं चलेगा। सावित्री मेरे साथ कतई नहीं जायेगी। तुम्हें चलना पड़ेगा कुमारी। तुम इससे इनकार नहीं कर सकतीं और अगर तुमने अपने मन की और मेरी बात नहीं मानी तो मैं भी दुनिया से मुह मोड़ लूंगा। कहीं चला जाऊंगा, यह संसार बहुत बड़ा है। मैं……।"

"तुमने जो फैसला किया है, क्या वह उचित है? सावित्री का व्याह मेरे बाद हुआ है। अतः पत्नी के सम्पूर्ण अधिकार उसी को प्राप्त हैं। मैं चल सकती हूं और चलूंगी; लेकिन मेरी भी एक शर्त है। मैं……।"

अभी कुमारी इतना ही कह पायी थी कि अनिल चाय के दो घूंट गले से नीचे उतार उत्सुक होकर बोल उठा—"क्या, क्या कहना चाहती हो तुम? कुमारी तुमने मुझे नयी जिन्दगी दी है। तुम कहो तो मैं तुम्हारे लिये आकाश से तारे भी तोड़ कर ला सकता हूं।"

इस पर कुमारी खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—"ओह! मैं कितनी खुशनसीब हूं। तुम मेरे सूरज हो। तुमसे ही मेरी दुनिया में उजाला है। उस प्रकाश को अंधकार का रूप न दो, यही विजय है। मैं लखनऊ जाऊँगी और मेरे साथ सावित्री भी चलेगी।"

अनिल एकदम चौंक उठा। वह तत्क्षण ही कहने लगा—"असम्भव बिल्कुल असम्भव; यह कभी नहीं होगा कुमारी। सावित्री मेरे साथ नहीं रहेगी। मुझे उससे घृणा है।"

यह घृणा एक दिन प्यार में बदल जायेगी मेरे देवता। समय परिवर्तनशील हैं। सावित्री जायेगी और अवश्य जायेगी।"

कुमारी की यह बात अनिल को अच्छी नहीं लगी। वह अप्रतिभ हो

उठा। तब कुमारी ने दूसरा आचरण अपनाया। वह धीरे से बोली—"तुम पर मेरा भी कुछ हक़ है, उस नाते मैं कुछ माँग सकती हूं ?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, मैंने मना कब किया है ?"

पति के मुंह से यह सुनते ही कुमारी जल्दी-जल्दी कहने लगी—"तो बस इतनी बात मान लो कि सावित्री को लखनऊ ले चलो।"

इस पर अनिल ने केवल कुमारी की ओर देख भर लिया। वह मौन हो गया। आगे बातचीत का सिलसिला नहीं जमा। चाय समाप्त हो गयी थी। कुमारी ट्रे लेकर कमरे से बाहर निकल आयी।

× × ×

दूसरे दिन सवेरे अनिल कुमारी के साथ मदन गाँव गया। दो दिन दम्पति वहाँ रहे उसके बाद वे लखनऊ गये। कुमारी ने सावित्री से बहुत कहा; मगर वह लखनऊ जाने के लिये राजी नहीं हुयी। कुन्ती मन में फूली नहीं समा रही थी कि उसकी बड़ी बहू पति के साथ परदेश गयी है गोविन्द बाबू भी प्रसन्न थे और सबसे अधिक प्रसन्नता थी रामबाबू को कि उन्होंने एक टूटी हुयी कड़ी जोड़ दी है। कुमारी का निर्वासित जीवन अब सुखमय बन गया है।

और सावित्री, वह भीतर ही भीतर जल-भुन कर खाक़ हो रही थी कि यह सब कुमारी का ही जादू है जो उनके (अनिल) सिर पर चढ़ कर बोल रहा है। कोई बात नहीं, मैं समायी करूँगी। आगे देखो क्या होता है ? कभी कुमारी खराब थी और मैं अच्छी। आज मुझ में बुराई आ गयी है और कुमारी में सारे संसार की खूबियाँ समा गयी हैं। मैं चाहती, चली जाती, जान-बूझकर नहीं गयी और जब जाना होगा तब लखनऊ उसी दिन पहुँच जाऊँगी। उसके लिये मुझे कोई नहीं रोक सकता। मैं पूछते-पूछते नहीं आयी, व्याह कर लायी गयी। मेरा क्रोध जब भड़केगा तो शोला बन जायेगा। आग लग जायेगी और यह सारा संसार जल जायेगा।

⊙

६

अनिल की अवस्था लगभग तीस वर्ष की थी। उसका रंग सांवला था, बाल घुँघराले। मूछें उसकी इतनी आकर्षक थीं कि पुरुषत्व स्पष्ट झलकता। उसका मध्यम कद था, बदन भरा हुआ। उसके शरीर पर सभी प्रकार का लिबास खूब जंचता। चाहे वह धोती कुरता हो, चाहे कमीज पायजामा, पैन्ट बूशर्ट, टाई और कोट भी उस पर फबता। वह कभी शू पहनता कभी चप्पल। घड़ी उसके हाथ में रोमर की थी। लखनऊ में उसने मकान किराए पर लिया था। वह था कैसरबाग में और उसकी पेन्ट वार्निश की दूकान थी हजरतगंज में। लखपती बाप का बेटा था। अतः पैसे का अभाव नहीं था। वह कुमारी के साथ लखनऊ आया। साथ में आया उसका तीन वर्षीय पुत्र अशोक। वह तोतली भाषा में पुकारता—मा पापा दी और कुमारी को कहता—नयी माँ, बली बऊ और जब कभी-कभी वह हँसी मिस कह देता तुमाली बऊ तो सब लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

कभी-कभी कुमारी अशोक से पूछने लगती कि मां के पास जाओगे, तुम्हें गाँव भेज दूँ या माँ को यहीं बुला दूं तो वह नाराज हो जाता, पैर पटकने लगता और छूटते ही कहता—"नई, नई वो माँ छाविత्री है। वो पापा दी छे ललती है। मत बुलाओ उछे, मैं दाँव नईं दाऊँदा।

माघ का महीना था। वसंत पंचमी का त्योहार बीत चुका था। कुमारी कभी-कभी गोमती स्नान के लिए जाती। ऐसे ही प्रति मंगलवार को वह जाती अमीनाबाद महाबीर जी के दर्शन करने। वह अपने साथ अशोक को भी ले जाती। अनिल मन में फूला नहीं समाता कि कुमारी कितनी शिष्ट एवं शान्त है। वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं, केवल आठवाँ पास है फिर भी उसका विवेक जागरूक है। उसमें मर्यादा की लाज है। वह अपने में धन्य है। जो सालों निर्वासित रही और उफ तक नहीं किया। क्या कसूर था उस बेचारी का ? यही कि वह अपने सास-ससुर के पास रहना चाहती थी। मेरे साथ लखनऊ नहीं आयी। जो भूल आवेश में हो जाती है, मनुष्य उसके लिए जीवन भर पछताता है।

एक दिन कुमारी ने पति से कहा कि वह सावित्री को गाँव से बुला

ले। अनिल इस पर क्रोधित हो उठा और तेज गले से बोला—"उसे बुलाने की जरूरत नहीं है कुमारी। देख लेना एक दिन अपने आप ही आ जायेगी। मैं जानता हूं कि उसमें कितनी क्षमता है और वह किस कोटि की नारी है। उसका नाम न लो मुझे उससे नफरत है।"

तुम्हारी बातें बिल्कुल अच्छी नहीं लगतीं। तुम्हें उससे नफरत है, तुम उसके कोई नहीं हो। मैं पूंछती हूं कि क्या वह जबरदस्ती यहाँ आ गयी। अपनों से घृणा नही की जाती, अपने ही काम आते हैं, पराये नहीं। मैं कल चिट्ठी लिखती हूं रामदादा को। वे सावित्री को भेज जायेंगे। बस तुम से कोई मतलब नहीं, तुम चुपचाप बैठे रहो।"

अनिल ने देखा कि कुमारी मुस्करा रही है। उसके चेहरे पर बेफिक्री के भाव हैं। वह निश्चिन्त सी है। यह रात का पहला पहर था। कमरे में हीटर जल रहा था। कुमारी स्टोव जलाये बैठी थी। आज उसने मटर-पुलाव बनाया था और पनीर की सब्जी। परांठे भी सेंके थे आलू भर कर पुलाव पक रहा था और वह सलाद के लिए टमाटर काट रही थी। जब उसने देखा कि अनिल ने उसकी बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो तनिक चुप रह कर वह फिर कहने लगी—"अब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूंगी, अपने मन की करूँगी। कल ही चिट्ठी लिखती हूँ राम दादा को। बस समझ लो कि सावित्री दो-चार दिन में यहां आ जायेगी।"

"फिर..............।"

अब कुमारी हंसने लगी। वह धीरे-धीरे बोली—"फिर क्या, फिर मैं चली जाऊँगी मदन गाँव और सावित्री यहाँ रहेगी।

"यह कभी नहीं होगा कुमारी। न सावित्री यहां आयेगी और न तुम ही यहां से कहीं जाओगी। रास्ता बार बार नहीं बदला जाता। जो मैंने तय कर लिया है वही करूँगा। तुम चिट्ठी नहीं लिखोगी, नहीं तो मैं भी राम दादा को लिख दूंगा कि वे सावित्री को लखनऊ न लायें। वह औरत नहीं जहर है कुमारी, मुझे उससे डर लगता है। वह........।"

"डर! और वह भी अपनी पत्नी से? वाह साहब वाह! आप आदमी हैं। मुझे डर लगता है पाप से, अपराध से और दुनियां से; लेकिन तुम पत्नी से डरते हो जो तुम्हारे पैर की जूती है।"

यह कह कर कुमारी खूब हँसी। अशोक जाग रहा था। उसने हठ

पकड़ी और रोने लगा रोते रोते बोला—"वली बऊ, कुमाली बऊ, थाना दो। पापा दी छे फिल ललाई कलना।"

कुमारी ने पुत्र को गोद में उठा लिया और उसकी बलायें लेने लगी और फिर पति की ओर उन्मुख हो बोली—"अच्छा आओ, खाना खाओ। पुलाव तैयार हो गया। मैं थाली लगाती हूं अब देर न करो।"

"नहीं, पहले यह तय करलो कि राम दादा को चिट्ठी लिखी जायेगी या नहीं। जिस दिन सावित्री यहां आयेगी मैं चलता नजर आऊँगा। बड़ी मुश्किल से तो उस बला से पीछा छूटा अब फिर वही काँटों का हार गले में डालूँ, यह मेरी समझ में तो नहीं आता।"

यह कह कर अनिल उठ खड़ा हुआ और कमर पर दोनों हाथ बांधे कमरे में टहलने लगा तभी सहसा बाहर के किवाड़ों की कुण्डी खटकी और होने लगी दस्तक। दम्पति चौंक गए, वे एक दूसरे की ओर देखने लगे कि इतनी रात को ऐसे जाड़े में कौन आया है।

कुण्डी खटकती रही और दस्तक भी होती रही, लेकिन आगन्तुक ने पुकारा नहीं, आवाज नही दी तब अनिल ने पूछा—"कौन है।"

बाहर से आवाज आयी—"वही जिसकी तुम सूरत भी नहीं देखना चाहते हो।......"

यह नारी कण्ठ था। अनिल फौरन ही पहचान गया कि ये सावित्री है। कुमारी भी अब किवाड़ों के पास आ गई थी। वह भी समझ गयी कि सावित्री आ गयी। उसने जल्दी से किवाड़े खोले और सावित्री को स्नेह पूर्वक अन्दर लिवा ले आयी। अनिल के क्रोध का पारावार न था, वह बार-बार मुट्ठियाँ भीचता, इधर से उधर जाता। टहलता क्या पैर पटक-पटक कर रखता और सावित्री की आंखों में भी मशाल जल रही थी। उसने गरम शाल उतार कर अलग फेंक दिया और धम्म से बैठ गयी एक कुर्सी पर। इस समय उसके दोनों स्वर तेजी से चल रहे थे।

सावित्री जिस कुर्सी पर बैठी थी उसी से तनिक हटकर लग रहा था हीटर। उसने उसकी ओर देखा और कुछ कहने ही जा रही थी कि तब-तक कुमारी पास आयी। उसने उसकी ठुड्डी ऊपर उठायी और फिर कपोल पर एक हल्की सी चपत लगाती हुयी स्नेह भरे स्वर में बोली—"किसके साथ आयी, सावित्री? अरे! पत्र भी नहीं दिया? सब कुशल मंगल है न?"

"खुदा से खैर मना रही हूँ।"

और यह कहकर सावित्री ने क्रोध से मुंह फुला लिया। उसका रूप उग्र हो गया। अशोक उसके पास आया। वह लिपट गया माँ से और अपनी तोतली भाषा में बोला—"तुम त्यों आ दयीं? तली दाओ। यहाँ बली बऊ लयेंगी, तुम नईं।"

"क्या कहता है? मैं चली जाऊँ, यहाँ बड़ी बहु रहेंगी? तू भी बदल गया? चल, हट दूर हो मेरे सामने से। मैं..........।"

और ताव में आकर सावित्री ने एक ऐसा थप्पड़ अशोक के मारा कि वह दूर जाकर सिर के बल गिरा। देर तक उसने साँस नहीं ली। कुमारी ने गोद में उठा लिया तो फूट कर रोया। अनिल क्रोध को पी गया और कुमारी भी शान्त रही। वह अशोक को चुप करा रही थी कि इतने में सावित्री बोल उठी—"क्या मिल जाता है तुम्हें? तुमने मेरा लाल भी छीन लिया? भगवान तुम्हें बहुत दुःख देगा। मैं अच्छी तरह समझती हूं कि तुम मेरी हरी-भरी दुनिया में आग लगाने आयी हो। ऐसी ही पति-परायण और सती-साधवी थीं तो फिर खसम ने दूसरा ब्याह क्यों कर लिया।"

"नालायक, बद्तमीज़! तू कहाँ से आगयी? निकल जा मेरे घर से। तेरी ज़बान में लगाम नहीं है। खबरदार, जो कुमारी को एक भी शब्द कहा तो जबान खींच लूंगा।"

यह कहने के साथ ही अनिल ने सावित्री के एक जोर का तमाचा जड़ दिया। वह तिलमिला गयी। उसका होंठ फट गया और खून आने लगा।

कुमारी ने जल्दी से अशोक को गोद से उतारा और पति का हाथ

पकड़ी और रोने लगा रोते रोते बोला—"वली वऊ, कुमाली वऊ, थाना दो। पापा दी छे फिल ललाई कलना।"

कुमारी ने पुत्र को गोद में उठा लिया और उसकी बलायें लेने लगी और फिर पति की ओर उन्मुख हो बोली—"अच्छा आओ, खाना खाओ। पुलाव तैयार हो गया। मैं थाली लगाती हूं अब देर न करो।"

"नहीं, पहले यह तय करलो कि राम दादा को चिट्ठी लिखी जायेगी या नहीं। जिस दिन सावित्री यहां आयेगी मैं चलता नजर आऊँगा। बड़ी मुश्किल से तो उस बला से पीछा छूटा अब फिर वही काँटों का हार गले में डालूँ, यह मेरी समझ में तो नहीं आता।"

यह कह कर अनिल उठ खड़ा हुआ और कमर पर दोनों हाथ बांधे कमरे में टहलने लगा तभी सहसा बाहर के किवाड़ों की कुण्डी खटकी और होने लगी दस्तक। दम्पति चौंक गए, वे एक दूसरे की ओर देखने लगे कि इतनी रात को ऐसे जाड़े में कौन आया है।

कुण्डी खटकती रही और दस्तक भी होती रही, लेकिन आगन्तुक ने पुकारा नहीं, आवाज नही दी तब अनिल ने पूछा—"कौन है।"

बाहर से आवाज आयी—"वही जिसकी तुम सूरत भी नहीं देखना चाहते हो।......"

यह नारी कण्ठ था। अनिल फौरन ही पहचान गया कि ये सावित्री है। कुमारी भी अब किवाड़ों के पास आ गई थी। वह भी समझ गयी कि सावित्री आ गयी। उसने जल्दी से किवाड़े खोले और सावित्री को स्नेह पूर्वक अन्दर लिवा ले आयी। अनिल के क्रोध का पारावार न था, वह बार-बार मुट्ठियाँ भींचता, इधर से उधर जाता। टहलता क्या पैर पटक-पटक कर रखता और सावित्री की आंखों में भी मशाल जल रही थी। उसने गरम शाल उतार कर अलग फेंक दिया और धम्म से बैठ गयी एक कुर्सी पर। इस समय उसके दोनों स्वर तेजी से चल रहे थे।

सावित्री जिस कुर्सी पर बैठी थी उसी से तनिक हटकर लग रहा था हीटर। उसने उसकी ओर देखा और कुछ कहने ही जा रही थी कि तब-तक कुमारी पास आयी। उसने उसकी ठुड्डी ऊपर उठायी और फिर कपोल पर एक हल्की सी चपत लगाती हुयी स्नेह भरे स्वर में बोली—"किसके साथ आयी, सावित्री ? अरे ! पत्र भी नहीं दिया ? सब कुशल मंगल है न ?"

"खुदा से खैर मना रही हूँ।"

और यह कहकर सावित्री ने क्रोध से मुंह फुला लिया। उसका रूप उग्र हो गया। अशोक उसके पास आया। वह लिपट गया माँ से और अपनी तोतली भाषा में बोला—"तुम त्यों आ दयीं ? तली दाओ। यहाँ बली बऊ लयेंगी, तुम नईं।"

"क्या कहता है ? मैं चली जाऊँ, यहाँ बड़ी बहु रहेंगी ? तू भी बदल गया ? चल, हट दूर हो मेरे सामने से। मैं..........।"

और ताव में आकर सावित्री ने एक ऐसा थप्पड़ अशोक के मारा कि वह दूर जाकर सिर के बल गिरा। देर तक उसने साँस नहीं ली। कुमारी ने गोद में उठा लिया तो फूट कर रोया। अनिल क्रोध को पी गया और कुमारी भी शान्त रही। वह अशोक को चुप करा रही थी कि इतने में सावित्री बोल उठी—"क्या मिल जाता है तुम्हें ? तुमने मेरा लाल भी छीन लिया ? भगवान तुम्हें बहुत दुःख देगा। मैं अच्छी तरह समझती हूं कि तुम मेरी हरी-भरी दुनिया में आग लगाने आयी हो। ऐसी ही पति-परायण और सती-साधवी थीं तो फिर खसम ने दूसरा ब्याह क्यों कर लिया।"

"नालायक, बद्तमीज़ ! तू कहाँ से आगयी ? निकल जा मेरे घर से। तेरी ज़बान में लगाम नहीं है। खबरदार, जो कुमारी को एक भी शब्द कहा तो जबान खींच लूंगा।"

यह कहने के साथ ही अनिल ने सावित्री के एक जोर का तमाचा जड़ दिया। वह तिलमिला गयी। उसका होंठ फट गया और खून आने लगा।

कुमारी ने जल्दी से अशोक को गोद से उतारा और पति का हाथ

पकड़ उलाहना भरे स्वर में बोली—"यह क्या किया तुमने ? यह मुनासिब नहीं । बेचारी का होंठ कट गया । कोई आदमी मिज़ाज का गरम होता है तो उसे मार नहीं डाला जाता । घर से नहीं निकाल दिया जाता । सावित्री हमारी है, अपनी है, परायी नहीं ।"

और फिर कुमारी सावित्री का खून अपनी धोती के खूंट से पोंछने लगी । उसने उसका हाथ झिटक दिया और तेज गले से बोली—"भुस पर मत लीपो रानी साहब, यह सब करतूत तुम्हारी है । उल्लू किसी और को बनाना । यहाँ तुम्हारी जैसी तो मेरा पानी भरती हैं ।"

सावित्री की ये बातें सुन अनिल उसकी ओर तेजी से झपटा; लेकिन वह उस पर हाथ छोड़ नहीं पाया । कुमारी बीच में आगयी । उसने उसे पकड़ लिया ।

अब सावित्री हो गयी विकराल, उसने चण्डी का रूप धारण कर लिया । वह दोनों हाथ नचा जोर-जोर से कहने लगी—"खबरदार जो मुझ पर हाथ छोड़ा तो अच्छा नहीं होगा । मेरा नाम सावित्री है, सावित्री । मैं तुमसे नहीं डरती । तुम मेरे होते ही कौन हो ?"

"तो फिर यहाँ क्या लेने आयी हो ? जाओ, अगर तुम में शरम है तो फौरन बाहर निकल जाओ; वरना…………।"

अनिल आगे नहीं बोल पाया क्योंकि कुमारी ने उसके मुंह पर अपना हाथ रख लिया था ।

रात आधी हो गयी । अशोक रोते-रोते भूखा ही सो गया । खाना किसी ने नहीं खाया, वैसे ही पड़ा रहा । अनिल सोचता रहा कि जिस व्याधि से मैं दूर-दूर भागता था वह जबरदस्ती गले में आकर बँध गयी । देखो, क्या होता है । मैं सावित्री को यहाँ रक्खूंगा नहीं ।

और सावित्री, वह अब भी क्रोध में जलभुन रही थी कि मैंने सास को नाराज किया, ससुर के बेमन से आयी । मर्यादा की सीमा का भी उलंघन किया । गाँव से अकेली शहर आयी । परिणाम विपरीत निकला । देखो, भविष्य में ऊंट किस करवट बैठता है ।

कुमारी, उसके बह रहे थे आँसू । वह आँचल से मुंह बार-बार पोंछती । बीच सिसक सी उठती कि क्या सोचा था, क्या हो गया । मैं बाधक हूं एक बहुत बड़ी बाधा सावित्री के मार्ग में । मैं काँटा हूं उसकी राह का ।

मुझे फूल बनना पड़ेगा और फूल की जिन्दगी दूसरे के लिये ही होती है यह जगविदित है। फूल सूंघा जाता है, कुचला जाता है। भगवान पर चढ़ता है और डाली में मुरझा भी जाता है। मैं एक कुचला हुआ कुसुम हूं। मुझ में गन्ध नहीं, पराग नहीं। मैं निर्वासिता हूं। मेरे लिए मदन गाँव ही उपयुक्त है।

●

८

प्रातः जब सवेरे की सफेदी फूटी और दिशाओं में होने लगा कलरव गान पक्षियों का तो अनिल की आँख खुली। उसकी निगाह सबसे पहले गयी कुमारी की चारपाई पर। बिस्तर बिछा था। कुमारी वहां नहीं थी। वह सोचने लगा कि धार्मिक प्रवृति है कुमारी की। हो सकता है कि वह गोमती स्नान करने गयी हो। पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ धर्म परायण होती हैं।

सावित्री सोयी थी घोड़े बेचकर। अशोक की भी नींद अभी नहीं खुली थी। वह उठा, कमरे में इधर-उधर टहलने लगा, जब धूप निकल आयी और घर में दिन का साम्राज्य पूर्णतया स्थापित हो गया तो सावित्री के मुंह से निकला कि न जाने आज कहाँ गयी हैं कुमारी बहन। कुछ नाराज तो नहीं हो गयीं। वे दिखलायी नहीं पड़ रहीं। अनिल ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह अपनी बात सोच रहा था कि रात को परिस्थिति ने भयानक रूप धारण कर लिया था। कुमारी ने बहुत समायी की। वह गम्भीर नारी है। शायद इसीलिए रास्ते से हट गयी। वह गोपालपुर नहीं गयी होगी। वह होगी इस समय मदन गाँव में सीधा वहीं जाऊं, यही एक रास्ता है।

इस तरह अनिल ने सावित्री से कुछ भी नहीं कहा। वह चुपचाप

चल दिया मदन गांव की ओर। रास्ते में सोचता जा रहा था कि कुमारी से जाकर क्या कहूंगा। उसे किस तरह समझाऊंगा। उस नारी में स्वार्थ की गंध तक नहीं। वह सावित्री नहीं कुमारी है। सावित्री स्वार्थ की पुतली है और वह है मर्यादा की देवी। उसमें अहंकार नहीं। एक संकोच है और जिसमें संकोच नही, वह पुरुष हो या नारी वह व्यर्थ है। संकोच वह सरिता है जिसमें मर्यादा डुबकियां लेती है। अहंकार वह नाला है जिसमें पत्थर तैरता नहीं डूब जाता है। मैं समझाऊंगा कुमारी को। उसे किसी तरह लखनऊ ले आऊंगा अगर वह न आयी तो मेरा भविष्य अंधकारमय समझो।

और अनिल शाम को जब पहुंचा मदन गाँव तो साँझ का झुटपुटा धीरे-धीरे धरती पर उतर रहा था। आंगन में तुलसी के चौरे के सम्मुख खड़ी कुमारी कर रही थी आरती। वह गुनगुना रही थी—"नमो नमो तुलसी महारानी, नमो नमो सबकी पटरानी।"

अनिल सामने, एकदम सामने आकर खड़ा हो गया। कुमारी चौंक गयी। वह व्यस्त स्वर में बोली—"तुम यहां ? मुझे यह आशंका पहले से थी। नयी बहू को खुश रक्खो, वही तुम्हारी जीवन-संगिनि है। मुझे छोड़ो। मैं पीला पत्ता हूं डाल का। मुझ में रौनक नहीं, मुझ में बहार नहीं। कोई कुसूर हुआ है मुझ से तो मैं उसकी क्षमा चाहती हूँ। मैं दासी बनकर रह सकती थी, अपना जीवन काट सकती थी; लेकिन परिस्थितियों ने विवश कर दिया इसीलिये यहां चली आयी। मुझे मजबूर न करो। मैं तुम्हारे साथ नहीं जा पाऊंगी। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण सावित्री को दुख हो। उसकी खेलने-खाने की उम्र है। उसे दुःख मत दो। आखिर तुमने दूसरा ब्याह क्या सोंच कर किया था ?"

"जो चाहो सजा दे लो कुमारी। मैं कुछ नहीं बोलूंगा। मैं भी जानता हूं कि पहला ब्याह मनुष्य की उन्नति का प्रतीक होता है और दूसरी शादी होती है जी का जंजाल। वह स्त्री मर्यादा का पालन नहीं करती। हमेशा अरमानों की भूखी रहती और जिसने रच लिया तीसरा ब्याह वह तो फिर औरत के तलवे ही चाहता है। मेरे दादा कहते थे, आज वह बात याद आती है कि पहली मेहरिया, दूसरी पतुरिया और भाई तीसरी होती है कुकरिया (कुतिया)। मेरी दृष्टि में तो स्त्री नीच है; पुरुष नहीं।

दम्पति की देर तक वार्ता हुयी। निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला।

जब अनिल ने अधिक जोर दिया तो कुमारी ने उसके सम्मुख अपना यह प्रस्ताव रखा कि वह अकेली लखनऊ में नहीं रहेगी। सावित्री उसके साथ रहेगी और मगर यह सब नहीं होगा तो वह लखनऊ कभी नहीं जायेगी।

इस पर सोचना पड़ गया अनिल को। वह, ठुड्डी पर हाथ रख विचार करने लगा। देर बाद बोला—"मैं तुम्हारा मतलब समझ गया कुमारी, जो तुम कहोगी वही होगा। कल सवेरे ही हम लोग लखनऊ के लिए रवाना हो जायें। क्यों, है न ठीक ?"

"मुझ से पूछते हो; अपने अंतःकरण से पूछो, कलेजे पर हाथ रक्खो कि तुम इसका निर्वाह कर पाओगे। एक म्यान में जब दो तलवारें रहती हैं तो वह टूट जाता है। क्षमता तुम में चाहिये, तुम पुरुष हो। मैं फिर पूछती हूँ कि दूसरा ब्याह क्या सोच कर किया था। सम्राट अशोक कुणाल जैसा पुत्र पाकर अपने को धन्य समझते थे; लेकिन फिर काम ने उन्हें सताया। उन्होंने तिष्यरक्षिता से ब्याह किया। वह निकली चरित्र हीन। वह कुणाल पर ही रीझ गयी। उसने छल-प्रपंच से उसकी आँखे निकलवा लीं। पुरुष जब आसक्त होता है तभी नारी उसे पतन की ओर ले जाती है। पतन है क्या, जानते हो ? जिन्दगी का एक उपहास जहाँ मर्यादा की हत्या होती है, जहाँ सीमा कहती है बाहें पसार कि कलंक यह है; कालिमा वह है। जिन्दगी दूर है, मौत सामने है। तुम चले जाओ। आये ही क्यों ? मैं तुम्हें भूल जाना चाहती हूँ।"

अब अनिल के पैरों के नीचे से जमीन निकल गयी। वह काठ हो गया और देखने लगा कुमारी की ओर। देर तक उसकी यही स्थिति रही। अन्त में जब कोई मार्ग नहीं सूझा तो वह आँसू बहाने लगा। वह सिसक रहा था शिशु की तरह। कुमारी देख रही थी उसकी गतविधि। उसने उसे समझाया और कहा—"मैं सबेरे ही तुम्हारे साथ लखनऊ चलूंगी; लेकिन एक शर्त है कि सावित्री को तुम अपने से प्रथक नहीं करोगे। कोई बर्तन खराब होता हैं, कोई टूट जाता है तो इसका मतलब यह नहीं हुआ कि हम बर्तन को फेंक दें। यह हमारी दुर्बलता है।"

कुमारी समझाती रही, अनिल कुछ नहीं बोला। रात के आगमन ने गाँव में सन्नाटा भर दिया था। कुमारी ने रसोई बनायी। अनिल ने चाव से भोजन किया। दम्पति में देर तक बातें होती रहीं जब तक वे सो नहीं

गये। कुमारी का कहना था कि जब तक मनुष्य संयम का साथ नहीं छोड़ता उसकी हार कभी नहीं होती। घबड़ाओ मत, साहस से काम लो। सारी गुत्थियाँ अपने आप ही सुलझ जायेंगी।

और अनिल के विचार उसके मानस- सागर में तरंगे ले रहे थे कि जिसे कुमारी जैसी पत्नी प्राप्त हो उसका जीवन धन्य है। मैंने बड़ी भूल की जो सावित्री से व्याह किया। जो सुख गाँव की मर्यादा में है वह नगर की सभ्यता में नहीं। गाँव का समाज अपने में अद्वितीय है और नगर की मर्यादा रोती है बड़े-बड़े आसुओं। वहाँ कोई किसी का नहीं। सभी स्वार्थ के पुतले हैं।

●

९

अनिल जब कुमारी के साथ लखनऊ पहुँचा तो सावित्री जलभुन गयी। उसने खाना नहीं बनाया और न जलपान की ही कुछ व्यवस्था की। जब कुमारी ने चाय बनायी और उसके सामने कप में रक्खी तो वह उग्र होकर बोल उठी—"माफ कीजिए देवीजी, तुम्हारी दया बड़ी महंगी पड़ती है मैं नहीं पीती चाय।"

और यह कहने के साथ उसने कप-प्लेट उठाकर फर्श पर पटक दिया। चाय फैल गयी, कप-प्लेट के टुकड़े-टुकड़े हो गए। अनिल क्रोध से आग बबूला हो उठा; किन्तु कुमारी मुस्कराती रही। वह धीरे से बोली—"खाने-पीने की चीजों पर क्रोध नहीं करते बहन। गुस्सा मुझ पर उतारो, कुसूर मैंने किया।"

"यह भी कोई कहने की बात है। चोर की दाढ़ी में तिनका होता ही है। मैं समझती हूं तुम्हारी चाल कि तुम कितनी चतुर हो। तुमने सोचा होगा कि मैं रूठूंगी तो मेरा पति दूसरा व्याह कर लायेगा। मैं रानी वनकर रहूंगी और उससे दासी का काम लूंगी। सो इस भूल में मत रहना। सावित्री कच्ची गोलियाँ नहीं खेली है। मैं खुद चाय वना लूंगी, पी लूंगी, तुम से मतलब नहीं।"

"हाँ सोचा तो यही था सावित्री। और कुछ कहना चाहती हो?" हँस कर कुमारी ने यह कहा और सावित्री की वलायें लेने लगी।

"मुझे मत छुओ, मुझे तुमसे नफ़रत है। मैं..........।"

अभी सावित्री इतना ही कह पायी थी कि अनिल वीच में आ गया। वह तेज गले से सावित्री की चोटी पकड़ हिलाता हुआ वोला—"तेरी इतनी मज़ाल कि सिर पर चढ़ रही है? शामत तो नहीं आयी है? मुझे जान की परवाह नहीं। मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा सावित्री, तुम्हारी हत्या कर दूंगा।"

"तो गाल क्यों बजाते हो, करके दिखलाओ न। मैं भी तो देखूं कि कैसे मर्द हो। जो गरजते हैं वरसते नहीं। मुझे तुमने समझा क्या है। मैं वह चिनगारी हूं कि तुम सबको खाक़ कर दूंगी। मैं..........।"

अभी सावित्री इतना ही कह पायी थी कि अनिल का उस पर छूट गया हाथ। कुमारी बचाती ही रही और वह उसकी लात-घूंसों से मरम्मत करने लगा। सावित्री पिट रही थी वह जोर-जोर से रोती और चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी—"तुम असल वाप के नहीं; अगर मेरी जान नहीं ली। तुम नीच हो, हत्यारे हो। पापी मुझे मारता है। अरे ऐसा ही शौक था नौकरानी का तो किसी को रख लेता, मुझ से ब्याह क्यों किया। नाश हो तेरा, तुझे मौत आये और क्या कहूँ, इस रन्डी को जो मदन गाँव आबाद किये है, तुम पर भी जादू डाले है। यह हरजाई है, इसका विश्वास करते हो?"

इस तरह वड़वड़ाती रही सावित्री और अनिल का हाथ वन्द नहीं हुआ। कुमारी देख रही थी कि वह उठकर भागी तो अनिल ने उसे जोर का एक धक्का दिया। वह भरभरा कर दीवाल पर गिरी। उसका सिर फूट गया। उससे खून की धार वह चली।

सावित्री मूर्छित हो गयी। वह चारों खाने चित्त फर्श पर पड़ी थी। कुमारी सहम गयी। उसने पति की ओर देखा, बोली कुछ भी नहीं। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी अपनी जगह पर खड़ी थी। अनिल जाकर पड़ रहा था

चारपाई पर। उसने सिर से लेकर पांव तक चादर तान ली। देर बाद कुमारी अपने स्थान से हिली। उसने सावित्री के सिर का खून पोंछा फिर उस पर पट्टी बांध उसे चारपाई पर लिटाया। सारी रात वह सोयी नहीं, विचारों के द्वन्द में ही पड़ी रही कि मैं पहले ही लखनऊ नहीं आना चाहती थी; लेकिन मजबूर की गयी फिर जब चली गयी तो दुबारा मुझे बाध्य किया गया। काश ! मैं न आती तो कितना अच्छा होता।

उस रात किसी ने पानी तक नहीं पिया। अनिल जब तक सो नहीं गया, वह विचारों की उधेड़बुन में ही लगा रहा कि अब सावित्री के साथ मेरा निर्वाह किसी तरह नहीं हो सकता। जो दांत बाहर निकल आते हैं वे फिर अन्दर नहीं आते। स्त्री जब मुंह-फट हो जाती है तो दबाये नहीं दबती। क्या कहेगा समाज मुझे कि मैं पत्नी से डरता हूं। यह और कुछ नहीं सब कर्मों का दण्ड है। जो दूसरे का अपमान करता है उसे सजा जरूर मिलती। मैंने कुमारी के कोमल विश्वास को ठुकराया। उसका मन दुखाया। वही बदला मिल रहा है मुझे। नीच प्रकृति की स्त्री कभी पति का साथ नहीं देती।

और कुमारी—आज उसके सोचने का ढंग कुछ और ही था कि मैं पहले ही जानती थी कि मैं बाधक हूं। सावित्री के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा। मुझे उसके मार्ग से हट जाना चाहिये, यही उचित है। यही सब सोच कर मदन गांव चली गयी थीं; लेकिन वे लिवा लाये। यहां रहती हूं तो कल्याण नहीं। रोज हाय-हाय होगी। गोपालपुर से भी वे मुझे लिवा लायेंगे। ऐसा ही होगा मदनगांव में। आखिर फिर जाऊँ कहां। मैंने सोच लिया है कि मैं रात के अन्तिम पहर में यहां से चल दूंगी। मैं कहां जाऊंगी, कुछ भी निश्चित नहीं है। चलती जाऊँगी जब तक थकूंगी नहीं, सांस नहीं लूंगी। मेरी मंजिल कहां समाप्त होगी, मेरा बसेरा कहां होगा, कुछ भी नहीं कह सकती; सभी अनिश्चित है।

इस तरह सोचती रही कुमारी और वह चारपाई पर पड़े-पड़े करवटें बदलती रही। जब आकाश में भोर का तीर छूटा। वह धीरे से उठी। उसने कुण्डी खोली और चल पड़ी अनिश्चित दिशा की ओर। जब शहर से दूर निकल गयी और सवेरे की आभा स्पष्ट होने लगी तो उसने सुना। एक किसान अपने खेत पर जाता हुआ गा रहा था—"चली कौन से देश गुजरिया तू बनठन के, मैं जाऊं पिया के देश सजनियां सज-धज के।"

कुमारी के आंसू आगये। वह आँचल से उन्हें पोंछने लगी। उसने एक दीर्घ उच्छवास ली और फिर मुक्त गगन की ओर देखने लगी।

●

१०

सवेरे जब अनिल की आंख खुली तो उसने कुमारी की चारपाई की ओर देखा। बिस्तर खाली था, कुमारी वहां नहीं थी। कुछ देर उसने प्रतीक्षा की फिर धीरे से पुकारा—"कुमारी, ओ कुमारी ! तैयारी करो। आज हम लोग गोमती स्नान करने चलेंगे।"

सावित्री ने यह सुना। उसने मुंह बना लिया फिर एक झोले में तौलिया, गंगाजली और अनिल के कपड़े डाल सामने रखती हुयी बोली - "क्या जहां मुर्गा नहीं बोलता, वहां सवेरा नहीं होगा। कुमारी; कुमारी ! जैसे मैं कुछ हूं ही नहीं। तुम गोमती नहाओ देवी देवता पूजो; लेकिन वह प्रेत पूजती। देख लो न, चली गयी सवेरे ही अलफ सवेरे। रानी साहब घर की मालकिन फिर क्या। चलो मैं चलती हूं। कंकड़ वाले पुल पर चलोगे या लोहे के।"

"तुम्हारे साथ तो मैं जहन्नुम में भी नहीं जाऊँगा। तुम्हें शर्म नहीं आती मुझसे बात करती हो ? तनिक लिहाज किया करो ?"

और यह कह कर अनिल फिर पुकारने लगा—"कुमारी, ओ कुमारी !"

किन्तु कोई नहीं बोला। आवाज कमरे में गूंजती रह गई। फिर जब दिन चढ़ने लगा और धूप खुलकर निकल आयी तो फिर अनिल का माथा ठनका। उसे चिन्ता हुयी कि मालूम होता है कि कुमारी कहीं चली गई। शंका सावित्री को भी हुयी, किन्तु उसे दुःख किंचित मात्र भी नहीं हुआ। अनिल

ने न मुंह धोया, न शौच के लिए गया। वह देर तक ठुड्डी पर हाथ रख कर सोचता रहा। अशोक पर जब उसकी निगाह गयी तो उसे पुकार कर बोला—"तुम्हारी कुमारी मां कहां गयी अशोक ?"

अशोक की समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने सारी बातों का मतलब यह निकाला कि उसकी कुमारी मां कहीं चली गयी। वह सिसक-सिसक कर रोने लगा और रोते-रोते बाप के वक्ष से लग गया। अनिल ने कुछ देर और प्रतीक्षा की फिर वह घर में नहीं रुका। उसने जेब में कुछ रुपये डाले और सीधा चल दिया स्टेशन की ओर। सबसे पहले वह गोपालपुर गया। कुमारी वहां नहीं थी। मां-बाप ने पूछा और राम दादा भी चिन्तित हुए। अनिल वहां नहीं रुका। वह उसी दिन चला गया मदन गांव लेकिन यह क्या, उस घर में ताला झूल रहा था। अनिल ने मत्थे पर दोनों हाथ दे मारे और मन ही मन सोचने लगा कि शायद अब कुमारी सहज ही नहीं मिलेगी। क्या करूँ ? लखनऊ लौट जाऊँ; वहां सावित्री होगी। उससे मुझे घृणा है। मैं कुमारी को प्राप्त करके ही रहूंगा। अशोक वहां है। चलूं देखूं, वह रो तो नही रहा है। बड़ी मुश्किल है, अब समझ में आया। जो लोग एक पत्नी के रहते दूसरा व्याह कर लेते हैं उनका यही हाल होता है। एक मैं ही कष्ट का भागी नहीं हूं। मेरे साथ कुमारी भी दुःख झेल रही है। सावित्री घृणा का वह गलित पदार्थ है जिसकी दुर्गन्ध से मस्तिष्क की नसें तन जाती हैं। खैर जाऊंगा पहले वहीं। देखूं शायद कुमारी आ गयी हो।

इस तरह सोचता विचारता अनिल लखनऊ आ गया। वह सावित्री से नहीं बोला। उसने बहुत पूछा कि कुमारी बहन कहां है गोपालपुर या मदन गांव में ? वे आयीं क्यों नहीं, तुमसे उनकी क्या बात हुई ? लेकिन अनिल ने कुछ भी जवाब न दिया। तीन दिन हो गए थे, उसने दूकान नहीं खोली। अशोक भी मुरझा गया था फूल की तरह। बाप को देखते ही वह रोने लगा। शहर लखनऊ में अनिल ने पत्नी को बहुत तलाश किया; लेकिन जाने वाले का निशान तक नहीं मिला।

सावित्री दोनों समय भोजन बनाती। वह पति से खाने के लिए आग्रह करती। मगर अनिल खाना तो दूर रहा, वह सावित्री से बात भी नहीं करता। जब अधिक पीछे पड़ती तो दोनों में झगड़ा होता। मामला तूल अर्ज पकड़ जाता। शाम को जब सब पड़ोसी सोते तो उस घर में कलह पात

मचता। लोग बड़बड़ाते और आपस में बातें करते कि कैसी है यह अनिल की वहू दिन-रात हाय हाय मचाए रहती है। बड़ी बहू सुशील है। वह लोक-लाज के लिए मरती है। उसकी आंख में हया का पानी है। वह क्या गई तब से घर नर्क बन गया। कितना सज्जन आदमी है अनिल। बेचारा कभी चूं तक नहीं करता। अफसोस! उसके साथ यह दुर्भाग्य जुड़ा है कि उसे सावित्री जैसी कंकाला पत्नी मिली है।

और अनिल को भी लगता संकोच, जब सावित्री बड़बड़ाने लगती। वह शर्म खाकर स्वयं ही चुप हो जाता; लेकिन सावित्री के बड़बड़ाने का अन्त न होता। इस तरह धीरे-धीरे एक सप्ताह बीत गया और कुमारी का कुछ भी पता नहीं चला तब योजना बनाई अनिल ने कि एक अनिश्चित अवधि के लिये वह कुमारी की तलाश में निकलेगा और लखनऊ लौटेगा तभी जब उसे प्राप्त कर लेगा। कुमारी मिलेगी कैसे नहीं? वह उसे तलाश करके रहेगा। उसका अन्त:करण बार-बार उससे कह रहा था कि "जाकर जापर सत्य सन्नेहू, सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।"

इस तरह अशोक और सावित्री को लखनऊ में छोड़ अनिल चल पड़ा कुमारी की तलाश में। वह लखनऊ से सीधा नैमिसारण्य तीर्थ की ओर गया और इधर सावित्री गहरे विचारों डूब गयी कि काश! कितना अच्छा हो अगर कुमारी न मिले। किसी तरह राम-राम करके उस बला से पीछा छूटा अगर कहीं फिर आ गई वह दुष्टा तो मेरी नाक में दम हो जायेगी। ईश्वर मति करदे उनकी (अनिल) कि वे रास्ते से ही लौट आवें या कुछ अस्वस्थ हो जायें। राह रोक ईश्वर उनकी। वे आगे न जांय, बीच से ही लौट आयें।

और अशोक अपनी मां से कहता कि—"मां, बली बऊ तो गई तुमने उन्हें भदा दिया।"

इस पर सावित्री चिढ़ जाती। वह तड़ातड़ थप्पड़ मार अशोक को पीट देती और कहने लगती—"तेरा सत्यानाश हो चाण्डाल, बार-बार उस पापिन का नाम लेता है? मैं नहीं जानती कैसी कुमारी, कैसी ब्याही, कौन नई और कौन पुरानी? चुप बैठ तेरी मां दो चार नहीं, केवल मैं हूं।"

अशोक चुप हो जाता और फिर वह मां के सामने कुमारी का नाम नहीं लेता। उसकी भोली आत्मा कहती और वह मन ही मन अनुमान लगाता कि शायद कुमारी मां नाराज होकर कहीं चली गई है।

११

नैमिसारण्य तीर्थ पर जब कुमारी का पता नहीं चला तो अनिल आगे बढ़ा। वह सीधा पहुंचा प्रयाग तीर्थराज। वहां जमुना के सब घाट देखे। फिर गंगा तट पर आया। दारागंज से लेकर संगम तक वह गंगा के दोनों किनारों पर भटका। अक्षयवट के मन्दिर भी गया। इसके बाद भरद्वाज आश्रम; किन्तु कुमारी का कहीं भी पता नहीं चला। कई दिन तक वह बाँध पर पड़ा रहा। चित्त उसका अस्थिर था। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिली तब उसने सोचा कि विन्धाचल चलूं। देखूं शायद कुमारी वहां हो।

विन्ध्याचल स्टेशन पर पहुंच विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में पहुंचा। मन्दिर विशाल था। वह पूरे दिन भर वहां रहा। इसके बाद उसने यात्रा आगे के लिये आरम्भ कर दी। बनारस पहुंच कर अनिल ने सोचा कि शायद कुमारी यहां आयी हो। उसने एक-एक करके सवेरे से लेकर सब घाट वैठे। पूरे दिन भर भटका। साँझ को जब थक गया तो दशाश्वमेध घाट पर बैठ विश्राम करने लगा। तभी सहसा उसकी दृष्टि पड़ी। एक स्त्री गंगा में स्नान करने आयी थी। उसने वस्त्र नहीं बदले। गीली धोती पहने ही चल दी। उसने गंगाजल से घड़ा भरा, उसे कमर पर रख कर वह चल दी सामने की ओर। अनिल ने पहचाना, वह कुमारी थी।

अनिल लपक कर पास गया। उसने धीरे से पुकारा—"कुमारी, ओ कुमारी! तुम यहां?"

"कौन? तुम। ओह! यहां भी आगये। मैं..............।"

कुमारी इतना ही कह पायी थी कि अनिल उसके पास जा धीरे से बोल उठा—"चौंकती क्यों हो कुमारी! जिस दिन से तुमने घर छोड़ा मैं लगातार तुम्हारी ही तलाश में घूम रहा हूं। कहां रहती हो यहां? कब आयीं? चलो मैं भी तुम्हारे साथ चल रहा हूं।"

कुमारी कुछ नहीं बोली। वह चलती रही निरन्तर। अनिल उसके साथ था। उसने जाकर गंगा तट पर बनी एक झोपड़ी में सांस ली। अनिल बैठ गया खजूर की चटाई पर। कुमारी ने गीली धोती बदली। फिर अन्डी के

तेल का दिया जलाया। थोड़े से चावल रक्खे थे। वह बाहर जाकर कुछ दूध ले आयी। लोहे की छोटी सी अंगीठी थी उसी पर खीर पकाने लगी।

अब रात पूर्णांशों में निखर आयी थी। फागुन का महीना था। बसंती बयार बह रही थी। उसके छोटे-मोटे झोंके आ जाते झोपड़ी के भीतर भी। कुमारी कह रही थी कि मुझ में विरक्ति आगयी है। मैं सबसे दूर रहना चाहती हूं। इसीलिए गोपालपुर नहीं गयी और न मदन गाँव। सोचा था कि तीर्थ पर रह कर जीवन व्यतीत कर दूंगी। यहां पिछड़े वर्ग के कुछ बच्चे हैं, उन्हें पढ़ाती हूं। लोग जो दे देते हैं उसी में संतोष कर लेती हूं। मुझे भूल जाओ। मैं वह राख हूं जो बर्तन मलने के काम भी नहीं आ सकतीं। सावित्री के पास रहो, वहां तुम्हारा पुत्र है। वह दूसरी पत्नी है। मुझे छोड़ो और यही समझ लो कि मैं निर्वासिता हूं। जाओ, लखनऊ लौट जाओ। किसी से मत कहना कि कुमारी बनारस में है। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी को दुःख पहुंचे। अगर जीवन में सुख ही बदा होता तो तुम दूसरा ब्याह ही क्यों करते।

कुमारी कहती रही और अनिल सुनता रहा। वह कुछ भी नहीं बोला। खीर पक चुकी थी। कुमारी ने वह एक थाली में परोसी और जब अनिल खाने लगा तो धीरे से बोली—"रात भर आराम करो। सवेरे की गाड़ी से लखनऊ चले जाना। मुझे विवश न करो। मैं तुम्हारे साथ नहीं जा पाऊंगी अगर मेरी बात मानते हो तो सावित्री को खुश रक्खो। मां-बाप को भी प्रसन्न रक्खो। जब एक बार साज़ का तार टूट जाता है तो फिर वह जुड़ता नहीं। राहें बदल जाती हैं तो अपने भी पराये कहलाते हैं। क्षमा करना, मैं बहुत कुछ कह गयी। मुझे..........।"

कुमारी की बात बीच में ही रह गयी। उसने देखा कि अनिल की आंखों से दो बड़े-बड़े आंसू धरती पर चू पड़े हैं। फिर वह कुछ नहीं बोली। देर तक दोनों में मौन व्यापार चला। बची हुयी खीर कुमारी ने खायी। तदुपरान्त वह बैठ गयी, पति के पैर दबाये। तब अनिल ने कहा—"मैं तुम्हें लेने आया हूं कुमारी और लेकर ही जाऊंगा यह मेरा दृढ़ निश्चय है। अगर तुम न मिलती तो मैं लौटकर घर कभी नहीं जाता। मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता कुमारी। सावित्री का नाम न लो कुमारी, ऐसी पत्नी ईश्वर दुश्मन को न दे। बोलो, क्या कहती हो? सवेरे चलती हो न!"

दिया अब भी मन्द लौ में जल रहा था। बाहर भौंक रहे थे कुत्ते

और गश्त के सिपाहियों की सीटियाँ भी बज रही थीं अबाध गति से क्योंकि यह गंगा का किनारा था और बनारस जैसे प्रसिद्ध शहर का प्रसिद्ध घाट दशाश्वमेध। यहां दूर-दूर से लोग आते और अधिकांश इसी घाट पर आते। इसी लिए पुलिस अधिक सतर्क रहती। दम्पति जाग रहे थे। कुमारी ने पति की बातों का कुछ भी जवाब नहीं दिया।

अनिल जब तक सोया नहीं कुमारी को समझाता रहा और कुमारी ने उससे एक बार भी अपने मुंह से नहीं कहा कि मैं सहमत हूं और तुम्हारे साथ लखनऊ चलूंगी।

कोरी आंखों सवेरा कर दिया कुमारी ने। उसे नींद नहीं आयी। वह सोचती रही कि काशी जैसे पुनीत तीर्थ पर आगयी हूं। अब कहीं नहीं जाऊंगी। घर संसार तो उनका बसता है और उन्हें ही शोभा देता है जिन्हें देखकर कोई खुश होता है, कोई बलायें लेता। यहां क्या है। जैसे भरा भादों वैसे ही सूखा सावन। मैं नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी; कभी नहीं जाऊंगी। कहा तो है किसी ने कि कांटा बुरा करील और बदरी का घाम; सौत बुरी है चून की रक्षा करना राम। मुझे सब उपदेश देते हैं और फिर उसी दल-दल में ले जाकर फंसा देना चाहते हैं जहां से निकल कर मैं आयी हूं। एक पुरुष और दो नारी। मेरा पति राजा नहीं है जो रानियों के अलग-अलग महल होंगे। और मान लो यह सौभाग्य भी प्राप्त हो गया तो भी कैकेयी कौशिल्या को देख कर जरूर जलेगी। किसी के पूत को राजतिलक होगा और किसी का बन जायेगा।

इस तरह सारी रात विचारों में उलझी रही कुमारी। मुर्गों की बांग सुनायी पड़ने लगी और किसी झोपड़ी में पढ़ रहा था तोता—"लटपट पक्षी चतुर सुजान, पढ़ो पर्वते सीताराम।"

कुमारी ने एक अंगड़ाई ली। वह उठ कर बैठ गयी। उसने बाहर निगाह भर कर देखा तो पूरब के आकाश में सवेरे की आभा स्पष्ट हो रही थी।

०

१२

जब कई दिन हो गये। अनिल घर नहीं पहुँचा तो सावित्री घबड़ायी। उसने अशोक को अपने साथ लिया और गोपालपुर के लिए रवाना हो गयी। वहां चिन्ता के बादल छा गये। प्रत्येक हैरान हो उठा कि आखिर कुमारी गयी कहाँ। अनिल उसी की खोज में गया है। पता नहीं कहाँ होगा। दिन पर दिन बीतने लगे। राम बाबू अलग हैरान थे। गोविन्द भूल गये थे अपना पराया। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें और कहाँ जायँ। कुन्ती को जब पुत्र की याद आती तो वह आँसू बहाने लगती। वह कहती सबसे रो-रोकर कि जिस दिन से मेरी बड़ी बहू इस घर से गयी, रोना-राग ही मचा रहता है। अभी देखो अनिल मौत के मुंह से लौटा और अब भटक रहा होगा कहीं। मैं तो जानती हूँ भगवान कि तुम्हारी दुनियां में कोई भी सुखी नहीं। छोटी बहू जब आयी तो सबने कहा कि सावित्री आयी है अनिल को सत्यवान बनायेगी; लेकिन वाहरे! सावित्री और सत्यवान, दुनिया में थू-थू हो रही है। मैं तो कहती हूँ कि सारा दोष छोटी बहू का ही है। यह न गयी। सारा किस्सा खत्म हो जाता। मुझे यह फूटी आंखों नहीं भाती।

सावित्री जब सास के मुंह से ऐसी बातें सुनती तो जल-भुन जाती और जोर जोर से कहने लगती कि सिर्फ मैं बुरी हूँ और सारा जमाना अच्छा है। बड़ी बहू जैसे कोई देवी-देवता हो। इतनी ही भली थी कुमारी तो फिर दूसरा ब्याह क्यों किया गया। मैं ऐसी बातें सुनना पसंद नहीं करतीं। सब यही चाहते हैं कि मैं यहाँ से चली जाऊँ; लेकिन यह कभी नहीं होगा। सावित्री ब्याह कर आयी है; खरीद कर नहीं। गोविन्द बाबू ने इधर उधर आदमी दौड़ाये। अनिल की खोज आरम्भ हो गयी; किन्तु एक लम्बा समय बीत गया और उसका कुछ भी पता नहीं चला।

एक दिन सबेरे जब राम बाबू गोविन्द को समझा रहे थे कि धीरज धरो भाई। मुसीबत झेलने से ही कटती है। सन्तोष करो। भगवान का नाम लो तभी सहसा तार घर का चपरासी सामने आकर खड़ा हो गया।

'तार आया है। किसका? लो पढ़ो राम बाबू। खुशखबरी हो

बहुयें भी जायेंगी। अगर इसमें फर्क पड़ा तो मैं यहीं गंगा में कूद कर मर जाऊंगा। सब लोग सन्नाटे में आ गये किसी के मुंह से कोई जवाब नहीं निकला। सावित्री बड़बड़ायी तो राम बाबू ने उसे कटु बचन कहे।

कुमारी ने बड़ों की आज्ञा का उलंघन करना उचित नहीं समझा। वह चुपचाप पति के साथ लखनऊ के लिए चल दी। चलते समय उसने बड़ों का शुभ आशीर्वाद प्राप्त किया और सावित्री, वह नाक भौं सिकोड़ी रही, मुंह बनाती रही। लखनऊ वाली ट्रेन में चार आदमी सवार हुये। एक था मल्लाह और दो किश्तियाँ। पतवार अकेला था। उसका नाम अशोक था। ट्रेन छकपक-छकपक करती हुयी आगे बढ़ रही थी। कुमारी सोच रही थी कि जब परिवार के लोग पीछा नहीं छोड़ते तो मजबूरी है। मैं कोशिश करूंगी और पूरी-पूरी कि सावित्री के इशारों पर नाचूं और उसका कहा मानूं। पति को भी प्रसन्न रक्खूं, अशोक का लालन-पालन करूं और सास ससुर को भी शिकायत करने का मौका न दूं। कुल-वधू और कुल-ललना का यही धर्म है उसका मैं पूर्णतया पालन करूँ। कितना सुख होता है नारी को जब उसके घर की मर्यादा मुसकरा-मुसकरा उठती है।

और अनिल उसके मस्तिष्क में चल रही थी आँधी कि ज्वार-भाटा। अभी शान्त नहीं हो पाया था तब एक नयी लहर आ गयी। उस लहर का नाम है तूफान। सावित्री तूफान से भी खतरनाक है। कोशिश करूँगा कि उसके साथ किसी तरह निर्वाह कर लूं।

और सावित्री बन गयी थी वह हिमखण्ड जिसका थोड़ा सा हिम-अंश समुद्र पर तैरता दिखलायी देता बाकी भाग छिपा रहता जिससे जलपोत टकराते और उन्हें हानि उठानी पड़ती। वह सोच रही थी मैं नाक में दम कर दूंगी कुमारी की। उससे भागते ही बनेगा और उनको (अनिल) वह नसीहत दूंगी जो याद करेंगे।

शिशु अशोक अपने में फूला नहीं समा रहा था कि वह लखनऊ जा रहा है बड़ी बहू और नयी बहू के साथ। पापा के साथ अमीनाबाद जायेगा और बड़ी बहू उसे ले जायेंगी गोमती नहाने के लिये। नयी बहू से बात नही करेगा, वे अच्छी नहीं।

१३

कुमारी अलख सवेरे उठती वह पूरा घर साफ करती। शौचादि से निवृत हो नाश्ता तैयार करने लगती। फिर जगाती सावित्री को वह कहती कि उठो बहन, तुम्हारे भाग्य से फिर रात होगी। मुंह-हाथ धोओ नाश्ता तैयार है।

इस पर सावित्री कभी-कभी झुंझला उठती। वह कहने लगती कि मुझे कच्ची नींद जगा दिया। यह मत किया करो, मुझे नहीं पसन्द है। लिये भाग्य और भगवान घूमती हो। मैं गांव की गँवारिन नहीं; शहर में पढ़ी और पली हूं।

कुमारी को क्रोध नहीं आता। वह मुसकरा देती फिर वह जगाती पति को। तदुपरान्त सोते हुए अशोक को उठा कर अंक में भर लेती, वह उसकी वलायें लेती, मुंह चूमती और कभी कभी तो इतनी मगन हो जाती, वह गोद में लिये ही झूमने लगती। उसके मुह से निकलता—"मेरा बच्चा जवां, मेरा नन्हा जवां होगा, वतन की याद को लेकर जो सीने से लगा लेगा, यह अपनी-अपनी जान देकर आवरू मां की बचा लेगा। वतन का पासवां होगा, मेरा नन्हा जवां होगा।"

और कभी-कभी जब कुमारी धार्मिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होती वह रामायण का पाठ करती मधुर स्वर में तो अनिल ही मगन नहीं होता; वल्कि सावित्री भी प्रभावित हो जाती। कुमारी गाती—"जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसेइ नाथ पुरुप बिनु नारी।"

और कभी उसके मुह से निकलता—"जनि लेहु मातु कलंक करुणा परिहरहु अवसर नहीं, दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाव जहं पाउव नहीं।"

सूरज निकलते-निकलते कुमारी की रसोई चढ़ जाती। दूकान जाने से पहले ही अनिल को अपनी पोशाक तैयार मिलती। महरी आकर टहल कर जाती। दोपहर को वह गृहस्थी के अन्य काम देखती। सावित्री के लिए वह कसीदा काढ़ती। उसके लिए ब्लाउज बनाती। साड़ियों में बार्डर टांकती फिर वह उसे तीसरे पहर अपने साथ घुमाने ले जाती। यद्यपि सावित्री को यह सब अच्छा लगता लेकिन फिर भी वह उससे जली भुनी रहती और मन में

कुढ़ा करती कि अगर कुमारी यहाँ से चली जाती तो मेरा दाम्पत्य जीवन सुखी हो जाता।

अनिल सावित्री से बात नही करता। इसका सावित्री दुख ही नहीं क्रोध भी था किन्तु कुमारी लगातार इसी कोशिश में थी कि सावित्री को खोया प्यार पुनः प्राप्त हो जाय। वह जो व्यजंन बनाती उसके लिए पति से पूछती कि कहो खीर कैसी बनी है। मुझसे तो अच्छी नहीं बनती इसीलिए सावित्री से बनवाई है और वाह, देखो इस टेरेलीन की कमीज़ को कितनी साफ़ धोयी है। बड़ी कुशल है वह। स्वभाव होता है अपना। मिजाज की तनिक जरूर गरम है, लेकिन है योग्य, इसमें कोई सन्देह नहीं।

किन्तु अनिल सब जानता था कि सावित्री कितनी कुशल है और कुमारी कितनी अयोग्य। उसे कभी तो क्रोध आ जाता और कभी कुमारी की इस तरह की बातें सुनकर वह मन ही मन मुस्करा देता कि दूसरे के स्वार्थ के लिए कुमारी झूठ भी बोल सकती है। वह चाहती है कि किसी तरह सावित्री मेरी प्रिय पात्री बन जाय, सो यह कभी सम्भव नहीं होगा। स्वप्न में भी नहीं।

कुमारी की यह स्थिति थी कि वह सावित्री के लिए जान देती; किन्तु सावित्री की प्रतिक्रियावादी भावनाओं में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा। वह अब भी यही सोचती कि यदि कुमारी यहां से चली जाय तो मेरी पौबारा हैं। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, यह जग विदित है। क्या करूँ पति की दृष्टि में मैं हेय हो चूकी हूं। लोग कहते हैं कि जो पत्ता पीला हो जाता है वह डाल में अधिक दिन रुकता नहीं। निगाह बदल जाती है तो सोना मिट्टी बन जाता है; लेकिन नहीं, दुनियां में कुछ ऐसे रिश्ते हैं जो टूटते नहीं। क्या होता है यह यंत्र-तंत्र-मंत्र ? किसी-किसी का कहना हैं कि यह पूरा ढकोसला है; लेकिन मैं आस्था रक्खूंगी, उस ओर कदम उठाऊँगी। पपीहे को चाहे पानी की बूंद भी न मिले, लेकिन उसकी चोंच खुली रहती है और वह पी कहां-पी कहां की रट लगाए रहता है। उसे आशा होती है कि कि बादल बरसेगा उसकी प्यास बुझेगी तो प्यास बुझेगी मेरी भी। मैं पति की प्रिया बनूंगी, मगर तभी जब कुमारी यहां नहीं होगी।

कभी-कभी जब सावित्री के मन में दूषित भावनायें घर कर लेतीं तो वह बुरी तरह से उलझ जाती और सोचने लगती कि एक रास्ता और है मैं उस पर क्यों न चलूं। मैं कुमारी को विष दे दूं। सारा किस्सा खतम हो जाय लेकिन

जहर लाऊं कहाँ से । घूमने जाऊं, चुपचाप जहर की शीशी ले आऊं और रात को खाने में कुमारी को दे दूं । उस दिन यह करना होगा कि शाम की रसोई मैं ही बनाऊं. नहीं तो फिर कुमारी को खाना परोसने का मौका मुझे कैसे मिलेगा ।

इसी तरह सावित्री अहर्निश कुत्सित विचारों में उलझी रहती । वह न पुत्र को देखती और न पति को । उसकी आंखों पर अहंकार का पर्दा पड़ा था । इसीलिये उसे दिन में भी रात नजर आती और रात लगती उसकी साथिन । वह सोते-सोते से चौंक जाती । उठकर बैठती और सोचने लगती कि मुझे लखनऊ आये इतने दिन हो गये और मैं अब तक कुमारी को यहां से हटा नहीं पायी ।

सावित्री पति के लिये भी कभी अच्छी बातें नहीं सोचती । जब भी कभी उसका ध्यान उसकी ओर जाता तो उसे उस व्यक्ति पर क्रोध आ जाता कि यह मेरा पति है । पहली स्त्री के रहते इसने दूसरा ब्याह क्यों किया और फिर किया था तो उसका निर्वाह क्यों नहीं कर पाया । वे कुमारी को लखनऊ क्यों लाये, मैं यह पसन्द नहीं करती । जब तक मेरे मन का नहीं होगा तब तक मैं न चैन से बैठूंगी और न किसी को बैठने दूंगी । जब आदमी का जी जलता है तो फिर वह दुनिया में आग लगा देता है । अपना ही घर जलाकर वह दूर खड़ा हो तमाशा देखता है ।

इस प्रकार सावित्री दिन रात उधेड़बुन में व्यस्त रहती । वह किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाती । कौन सा कदम उठाये । उसे हर दिशा सूनी लगती और हर तरफ से उसके कानों में आवाज आती कि तुम अकेली हो सावित्री दुनिया में तुम्हारा कोई नहीं ।

१४

सावित्री उस चिराग की तरह बुझ गयी थी जिसमें तेल भरा था और वातियां फिर भी नहीं जल रहीं थीं। वह लड़ायी झगड़े से पार नहीं पाती क्योंकि कुमारी की समायी वाली आदत थी।

दिन पर दिन बीतते गये। एक रात बीतती तो सावित्री को लगता कि वर्ष बीता और दिन लगता उसे पहाड़ जैसे वह काटे ही नहीं कटता। ससुराल में भी कोई उसे स्नेह नहीं करता। पीहर जाकर उसे रहना पसंद नहीं था। अतः विवश वह लखनऊ में ही रह रही थी। वर्षा की ऋतु थी उस पर सावन का महीना। सांझ से ही वादल वेष बदल रहे थे और अव लगी थी रिमझिम की झड़ी। बूंदे नाचती थिरकतीं आ रही थीं धरती पर। यद्यपि शोर मचा था पानी का; लेकिन कानों में बीन सी बज रही थी। सावित्री दो-चार दिन से कुमारी से बड़ी प्रसन्न थी न जाने क्यों। वह हंस-हंस कर उससे बातें करती। उसे कोई काम नहीं करने देती। सब कुछ आगे ही आगे करती। आज उसने पिस्ते की खीर बनायी, जिसमें केशर तो पड़ी ही थी, कस्तूरी का भी पुट दिया गया था। अशोक अभी जाग रहा था। अनिल दूकान से आ चुका था। हालांकि वह सावित्री से असन्तुष्ट था; मगर फिर भी उसके हाथ का परोसा हुआ भोजन इसलिए कर लेता कि ऐसा न करने पर कुमारी को दुःख होगा। स्टेनलेस स्टील की थाली में खीर परोसी गयी। अनिल ने अशोक को बुलाया तो उसने जवाब दिया कि मैं बड़ी माँ के साथ खाऊँगा। सावित्री ने एक बड़े कटोरे में खीर परोस कुमारी के सामने रख दी। फिर कुछ सोच कटोरा अन्दर उठा ले गयी और खीर लाकर थाली में पलट दी। अशोक चम्मच लेकर आगे बढ़ा तो सावित्री बोली कि मैं तुझे अलग देती हूँ। लेकिन कुमारी ने कहा कि क्या जरूरत, मेरे साथ खा लेगा।

और जब अशोक खाने लगा चम्मच वह मुंह तक ले भी नहीं जा पाया था तभी सावित्री ने उसके हाथ से चम्मच छीन लिया। वह बोली, यह ठीक नहीं मैं तुझे और देती हूं। अशोक रोने लगा। इस के दो-तीन चपतें जड़ दीं। अनिल को उसका यह व्यो[illegible] था। किन्तु किसी तरह वह खाता रहा, बोला कुछ

अशोक को चुप करा रही थी और सावित्री बड़बड़ा रही थी। तभी एक बिल्ली आयी और धीरे-धीरे वह थाली की खीर चट करने लगी।

अनिल ने बिल्ली को देखा तो उसे भगाने लगा। बिल्ली थोड़ी दूर दौड़ी और चक्कर खाकर गिर पड़ी। अनिल को आश्चर्य हुआ कि वह चारो खाने चित्त थी देखा सावित्री ने भी। उसने दृष्टि नीची कर ली और कुमारी रह गयी अवाक कि यह क्या हो रहा है।

"तुम्हारी थाली में जहर मिला है कुमारी। बिल्ली मर गयी इसीलिए सावित्री ने अशोक को खीर नहीं खाने दी।" यह कहने के साथ अनिल उठ खड़ा हुआ। उसने खाना छोड़ दिया।

सावित्री के कांटो तो बदन में लहू नहीं, वह बिल्कुल खामोश थी और कुमारी परिस्थिति पर काबू पाती हुई पति से कह रही थी—"चिल्लाते क्यों हो ? कोई सुन लेगा तो बदनामी होगी, मैं सावित्री बहन की इच्छा पूरी करूँगी।

यह कह कुमारी ने जब खीर भरा चम्मच होंठो से लगाया तभी अनिल चिल्लाया और सावित्री ने पकड़ लिया उसका हाथ। वह रोकर बोली—"मुझे शर्मिंदा न करो बहन कानून की दृष्टि से मैंने जुर्म किया है। मैं गुनाहगार हूँ। मुझे क्षमा करो, अब भविष्य में ऐसा कभी नहीं करूँगी।"

सावित्री ने बात समाप्त होते ही कुमारी के सामने वाली खीर नाली में डाल दी। कुमारी सावित्री को समझाने लगी। उसने कहा—"कि सावित्री विष देकर किसी को मारना, बहुत पाप है। हाँलाकि मुझे जान का कोई मोह नहीं है फिर भी तुम अपने सिर पातक मोल क्यों लेती हूं। अब चर्चा न चलाओ जो बीत गया उसे भूल जाओ। उठो खीर बटलोई में बहुत है। दूसरी थाली में परोस लाओ हम सब लोग साथ ही खायेंगे।"

इस तरह कुमारी ने एक ही थाली में सावित्री के साथ खीर खायी। अनिल सबकी गतिविधि देखता रहा। आज से उसका सावित्री पर से रहा सहा विश्वास भी उठ गया। वह इस विचित्र घटना को जितना ही भूलने का प्रयत्न करता उतना ही वह उसे कचोटती उसके कानों में कोई कहता कि किसी का मन दुखाना मानवीय धर्म नहीं। मैंने सावित्री से कुछ नहीं कहा यह अच्छा ही किया। नीचता की हद हो गयी। नारी इतनी पतित हो सकती है यह मैं नहीं जानता था। विश्वास वह पूंजी है जिसको दांव पर लगाकर

मनुष्य जिंदगी हारता और जीतता है जिसका कोई यकीन नहीं रह जाता उसका अस्तित्व सदा-सर्वदा के लिए मिट सा जाता है। सावित्री कोयला भी नहीं वह उससे से भी बदतर है जब कि कुमारी हीरा है। अपनी छोटी सी भूल के लिए आदमी जिन्दगी भर पछताता है। ठीक यही स्थिति मेरी है। मैंने सावित्री से विवाह करके अपने जीते जी नर्क में डाल दिया।

अनिल को सारी रात नींद नहीं आयी वह निरन्तर सोचता ही रहा। कुमारी करवटें बदलती रही। वह सोचती रही कि मेरी छाया से भी सावित्री घृणा करती है। वह मेरे साथ रहना पसन्द नहीं करती। क्या करूं वे मानते नहीं वर्ना मैं कहीं भी अकेली रह सकती हूं। इसी तरह कोई भी अनहोनी घटना घट सकती है। भावी अनर्थ से कैसे बचूं, उससे बाहर कैसे निकलूं कुछ भी समझ में नहीं आता।

और सावित्री उसकी स्थिति हारे हुए जुआड़ी की तरह थी कि वह बाजी हार क्यों गयी। उसे दाँव जीत लेना चाहिए था। उसके मन में विचारों का ज्वार उठ रहा था। वह करवटें बदलती हाथ मलती और दाँत पीसती कि आज उसने कुमारी के सम्मुख मात कैसे खाली। वह उसे क्षमा करके महत्व पा गयी और सावित्री को अपना अपराध सिर पर ओढ़ना पड़ा। यह कितनी बदनामी की बात है। काश वह कुछ दिन और ठहर जाती और कुमारी को विष ऐसे अवसर पर देती जब अनिल घर में न होता। मौका चूक जाना मौत से सलाम करना बराबर होता है।

रात धीरे-धीरे बीतती रही। पानी कभी बन्द हो जाता कभी बरसने लगता। उमस का नाम भी न था। हवा ठंडी-ठंडी वह रही थी। सावित्री को लग रहा था कि कोई उसका गला दाब रहा है और तेज गले से कह रहा है कि तुमने अपराध किया है तुम्हारे गुनाहों की सजा मौत है सावित्री। एक बार तो वह चीखते-चीखते रह गयी। उसने तत्क्षण ही अपने को सम्हाल लिया और आँखें खोलकर अनिल और कुमारी की ओर देखने लगी। वह दोनों ही आंखों में नींद लाने का उपक्रम कर रहे थे।

१५

उस घटना को कई दिन बीत गये। एक दिन सावित्री कहीं गयी थी अनिल घर में था। एकान्त पाकर उसने कुमारी से कहा कि मैं अब सावित्री के हाथ की कोई भी वस्तु नहीं खाऊंगा और साथ ही यह शर्त भी है कि कुमारी कि तुम्हें भी उसकी छुई हुई कोई चीज नहीं खाने दूंगा। मुझे उसपर भरोसा नहीं रहा। उसने बहुत बड़ा विश्वासघात किया जिसके विचार एकबार भटक जाते हैं वे फिर बांधे नहीं बंधते। सावित्री पर ईर्षा का भूत सवार है वह उस पर से उतरेगा जब तक कोई अनिष्ट नहीं हो जाता।

इस पर कुमारी ने पति को बहुत समझाया। उसने कहा कि समय पाकर मनुष्य की मन स्थिति बदल जाती है। सावित्री में भी परिवर्तन होगा इसमें संदेह नहीं। उसको उसके हाल पर छोड़ देना सरासर भूल है उसे क्षमा के जादू से जीतो। वही एक दिन तुम्हारे विश्वास की पात्री बनेगी।

यद्यपि कुमारी ने पति को सावित्री की ओर मोड़ने की बहुत कोशिश की लेकिन उसके मन से अविश्वास नहीं निकला। घृणा जागती रही। उसने यही कहा कि तुम कुछ भी कहो कुमारी मैं पत्थर को फूल नहीं कह सकता। सावित्री तुम्हें ठग लेगी तुम उसे नहीं ठग पाओगी। कारण यह है कि तुम्हारे साथ सद्‌भावनायें हैं और उसके अंतर में द्वेष पल रहा है।

और कुमारी भी सोचती रही कि पति को नाराज होने का अवसर न मिले। इसलिए आज से जलपान की सामग्री से लेकर भोजन तक की सारी व्यवस्था वह अपने हाथ में लेगी। क्योंकि अनिल ने उससे स्पष्ट कह दिया था कि अगर नाश्ता और खाना तुमने न बनाया तो मैं भोजन नहीं करूंगा।

अब नित्य का नियम हो गया था। कुमारी सवेरे से लेकर रात तक गृहकार्यों में व्यस्त रहती, उसे एक क्षण के लिए भी अवकाश नहीं मिलता। फिर भी वह हरदम प्रसन्न रहती। सावित्री इस तथ्य को समझ गयी थी कि कुमारी उसकी ओर से सावधान हो गयी है। वह दुनियादारी के नाते उसका हर काम में हांथ बटाती और उसके हर आदेश का पालन करती। उसमें समायी न जाने कहां से आ गयी थी।

अनिल देखता कि कुमारी ने सावित्री को क्षमादान करके परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है तो उसे मन ही मन कुमारी पर गर्व होता।

वह जब घर आता तो वह हंस-हंस कर बातें करता सावित्री यह देखती तो जल-भुन जाती। अक्सर वह सोचा करती कि मैं क्या करूं कौन सा कदम उठाऊं, किसी तरफ खायी है तो किसी तरफ खंदक। यहां इस स्थिति में रहना कहां तक सम्भव है।

इस तरह घर के तीनों सदस्य अपनी-अपनी चिंताधारा में बह रहे थे। नारी सब कुछ सह सकती है लेकिन सौत को नहीं देख सकती। उसे देखते ही उसकी भूख हर जाती, प्यास मर जाती, और वह अर्द्ध विक्षिप्त सी हो जाती। सावित्री ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक दिन वह आयेगा जब कुमारी पीहर से बुलायी जायेगी और फिर वह वापस नहीं जायेगी। उसने अपने सपनों का जो स्वर्णिम संसार बसा रखा था, उसमें आग लग गयी और अब हाहाकार मचा था। वह ठंडी-ठंडी आहें भरती। कभी गरम उसास लेती और अहरनिश सोचा करती कि मैं इस जीवन का अंत कर दूं शायद वही ठीक रहेगा। जब नारी पति के प्यार से वंचित रहती है तो उसके जीवन से कोई लाभ नहीं। वह जीवित मृत हो जाती है। वैसी ही मैं भी हूं एक जिन्दा लाश। मेरा अस्तित्व कुमारी के सम्मुख कुछ भी नहीं है। आदमी यह सोचकर दौड़ता है कि घर का देवता पत्थर का है। बाहर सोने और पारस का। मैं भी वही पारस समझ कर लायी गयी थी यहां। अफसोस समय का परिवर्तन मैं पत्थर बन गयी और कुमारी पारस। क्या करूँ, आत्महत्या कर लूं या ससुराल छोड़-कर अलग जा बसूं और गुजारा लूं।

सावित्री दिन रात इसी तरह मनन-मन्थन में पड़ी रहती। सलोनी तीज का सलोना पर्व आया। कुमारी ने उसके हाथों में मेंहदी रची, उसने ताजी ही धो डाली। उसका यह व्यापार कुमारी को अच्छा नहीं लगा। नाग-पंचमी वाले दिन नागों की पूजा हुई, उन्हें दूध पिलाया गया गोमती के किनारे गुड़ियों का विशाल मेला लगा। पति के आग्रह पर कुमारी मेले में गयी और सावित्री ने जाने से साफ इनकार कर दिया।

इसके बाद आया राखी का पवित्र त्योहार। अमीनाबाद का बाजार खूब सजा, रौनक चौक के गोल दरवाजे पर देखते ही बनती थी। कहीं बारा-मासा वालों की मंडली, ढोलक और हारमोनियम पर गा-गा कर कितावें बेचती, कहीं कजरी और दादरा की वहार थी। हलवाई की दुकानें दुलहिन सी सज रही थीं। उन पर टंगे घंटे बीच-बीच अपना स्वर बुलंद करते और कहीं

१५

उस घटना को कई दिन बीत गये। एक दिन सावित्री कहीं गयी थी अनिल घर में था। एकान्त पाकर उसने कुमारी से कहा कि मैं अब सावित्री के हाथ की कोई भी वस्तु नहीं खाऊंगा और साथ ही यह शर्त भी है कि कुमारी कि तुम्हें भी उसकी छुई हुई कोई चीज नहीं खाने दूंगा। मुझे उसपर भरोसा नहीं रहा। उसने बहुत बड़ा विश्वासघात किया जिसके विचार एकबार भटक जाते हैं वे फिर बांधे नहीं बंधते। सावित्री पर ईर्षा का भूत सवार है वह उस पर से उतरेगा जब तक कोई अनिष्ट नहीं हो जाता।

इस पर कुमारी ने पति को बहुत समझाया। उसने कहा कि समय पाकर मनुष्य की मन स्थिति बदल जाती है। सावित्री में भी परिवर्तन होगा इसमें संदेह नहीं। उसको उसके हाल पर छोड़ देना सरासर भूल है उसे क्षमा के जादू से जीतो। वही एक दिन तुम्हारे विश्वास की पात्री बनेगी।

यद्यपि कुमारी ने पति को सावित्री की ओर मोड़ने की बहुत कोशिश की लेकिन उसके मन से अविश्वास नहीं निकला। घृणा जागती रही। उसने यही कहा कि तुम कुछ भी कहो कुमारी मैं पत्थर को फूल नहीं कह सकता। सावित्री तुम्हें ठग लेगी तुम उसे नहीं ठग पाओगी। कारण यह है कि तुम्हारे साथ सद्भावनायें हैं और उसके अंतर में द्वेष पल रहा है।

और कुमारी भी सोचती रही कि पति को नाराज होने का अवसर न मिले। इसलिए आज से जलपान की सामग्री से लेकर भोजन तक की सारी व्यवस्था वह अपने हाथ में लेगी। क्योंकि अनिल ने उससे स्पष्ट कह दिया था कि अगर नाश्ता और खाना तुमने न बनाया तो मैं भोजन नहीं करूंगा।

अब नित्य का नियम हो गया था। कुमारी सवेरे से लेकर रात तक गृहकार्यों में व्यस्त रहती, उसे एक क्षण के लिए भी अवकाश नहीं मिलता। फिर भी वह हरदम प्रसन्न रहती। सावित्री इस तथ्य को समझ गयी थी कि कुमारी उसकी ओर से सावधान हो गयी है। वह दुनियादारी के नाते उसका हर काम में हांथ बटाती और उसके हर आदेश का पालन करती। उसमें समायी न जाने कहां से आ गयी थी।

अनिल देखता कि कुमारी ने सावित्री को क्षमादान करके परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है तो उसे मन ही मन कुमारी पर गर्व होता।

वह जब घर आता तो वह हंस-हंस कर बातें करता सावित्री यह देखती तो जल-भुन जाती। अक्सर वह सोचा करती कि मैं क्या करूं कौन सा कदम उठाऊं, किसी तरफ खायी है तो किसी तरफ खंदक। यहां इस स्थिति में रहना कहां तक सम्भव है।

इस तरह घर के तीनों सदस्य अपनी-अपनी चिंताधारा में वह रहे थे। नारी सब कुछ सह सकती है लेकिन सौत को नहीं देख सकती। उसे देखते ही उसकी भूख हर जाती, प्यास मर जाती, और वह अर्द्ध विक्षिप्त सी हो जाती। सावित्री ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक दिन वह आयेगा जब कुमारी पीहर से बुलायी जायेगी और फिर वह वापस नहीं जायेगी। उसने अपने सपनों का जो स्वर्णिम संसार बसा रखा था, उसमें आग लग गयी और अब हाहाकार मचा था। वह ठंडी-ठंडी आहें भरती। कभी गरम उसास लेती और अहरनिश सोचा करती कि मैं इस जीवन का अंत कर दूं शायद वही ठीक रहेगा। जब नारी पति के प्यार से वंचित रहती है तो उसके जीवन से कोई लाभ नहीं। वह जीवित मृत हो जाती है। वैसी ही मैं भी हूं एक जिन्दा लाश। मेरा अस्तित्व कुमारी के सम्मुख कुछ भी नहीं है। आदमी यह सोचकर दौड़ता है कि घर का देवता पत्थर का है। बाहर सोने और पारस का। मैं भी वही पारस समझ कर लायी गयी थी यहां। अफसोस समय का परिवर्तन मैं पत्थर बन गयी और कुमारी पारस। क्या करूँ, आत्महत्या कर लूं या ससुराल छोड़-कर अलग जा बसूं और गुजारा लूं।

सावित्री दिन रात इसी तरह मनन-मन्थन में पड़ी रहती। सलोनी तीज का सलोना पर्व आया। कुमारी ने उसके हाथों में मेंहदी रची, उसने ताजी ही धो डाली। उसका यह व्यापार कुमारी को अच्छा नहीं लगा। नाग-पंचमी वाले दिन नागों की पूजा हुई, उन्हें दूध पिलाया गया गोमती के किनारे गुड़ियों का विशाल मेला लगा। पति के आग्रह पर कुमारी मेले में गयी और सावित्री ने जाने से साफ इनकार कर दिया।

इसके बाद आया राखी का पवित्र त्योहार। अमीनाबाद का बाजार खूब सजा, रौनक चौक के गोल दरवाजे पर देखते ही बनती थी। कहीं बारा-मासा वालों की मंडली, ढोलक और हारमोनियम पर गा-गा कर किताबें वेचती, कहीं कजरी और दादरा की वहार थी। हलवाई की दुकानें दुलहिन सी सज रही थीं। उन पर टंगे घंटे बीच-बीच अपना स्वर बुलंद करते और कहीं

लाउड-स्पीकर जनता का मनोरंजन करता। लखनऊ नगरी उल्लास में डूब रही थी। कुमारी और अनिल जब घर पहुंचे तो देखा कि सावित्री सिर से लेकर पांव तक चादर ताने लेटी। उसने राखी नहीं बांधी, पुरोहित आया तो उसे डांट कर भगा दिया।

अब भादों आरम्भ हो चला था। पानी कभी-कभी बरसता वह भी बड़ी-बड़ी बूंदों में। उमस खूब होती, कभी-कभी सड़ी गर्मी से जनता परेशान हो जाती। जन्माष्टमी का त्योहार भी फीका ही रहा। भादों आधा बीत गया और सावित्री किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पायी।

कुमारी को जब समय मिलता तो वह एकान्त में बैठकर सावित्री को खूब समझाती, उससे कहती कि यह दुनिया दो दिन का मेला है और जिंदगी चार दिन की कहानी। चाहे हंस बोल कर बिता दो चाहे रोकर। भाग्य में जो बदा होता है वही मिलता है मनुष्य को हर स्थिति में संतोष रखना चाहिए। रूठता वही है जिसका कोई अपना होता है। वह अभागा कहलाता है सावित्री जिसका कोई नहीं होता।

किन्तु सावित्री पर कुमारी की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रगट में तो वह उससे हंस कर बोलती, मीठी-मीठी बातें करती। किन्तु पीठ-पीछे मन ही मन देती गालियां, उसे खूब जी भर कर कोसती और भगवान से हाथ जोड़ कर विनती करती कि ईश्वर या तो कुमारी को उठा ले या फिर मुझे। हम दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।

अनिल को लग रहा था कि अब शायद सावित्री में सुधार हो रहा है। उसे इससे संतोष होता और वह सोचने लगता कि जिस दिन सावित्री में समायी की क्षमता आ जायेगी मेरा घर स्वर्ग बन जायेगा मेरे सम्मुख फिर कोई भी अभाव नहीं रहेगा। समय हमेशा एक ही जैसा नहीं बना रहता उसमें परिवर्तन अवश्य होता है।

इस प्रकार अनिल अपने परिवार में रह रहा था। उसे आशा थी कि सावित्री यदि कुमारी की संगति में रही तो उसके मन का मैल धुल कर रहेगा। उसमें सुगन्ध आयेगी, और वह कस्तूरी बन कर पूरे घर को अपनी सुरभि से भर देगी। और कुमारी की यह धारणा थी कि सावित्री गरम लोहा है उसे ठन्डे लोहे से ही काटा जा सकता है। वह एक दिन सबकी प्रियपात्री बनेगी इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

१६

वर्षा ऋतु का अन्त हो चुका था। शरद के आगमन की सूचना लेकर खंजन पक्षी आ चुका था। आकाश निर्मल दिखलाई पड़ता। गोमती का जल स्वच्छ नजर आता। मौसम बदल रहा था। रात को गुलाबी जाड़ा होता। दशहरा का पर्व आकर जा चुका था। शरद पूर्णिमा की रात आई और नई पुरानी होकर चली गई। करवा चौथ का व्रत सावित्री ने वेमन से रक्खा। आज कल वह कुछ खोई-खोई सी रहती। उसकी गतिविधि देखकर लगता कि वह परेशान है।

एक दिन सावित्री की एक पड़ोसिन से कुछ गुप्त मंत्रणा हुई। वह उसे अपने साथ गोमती के उस पार डालीगंज लिवा ले गई। वे दोनों एक ओझे से मिलीं। उसने बतलाया कि रुपये पचास खर्च होंगे। बस फिर तुम्हारी सौत कुमारी ठिकाने लग जायेगी।

सावित्री हंसी-खुशी घर लौट आई। उस दिन वह बहुत प्रसन्न रही। कुमारी के साथ उसने बहुत अच्छा व्यवहार किया। सारी रात उसे नींद नहीं आई, तारे गिनती रही। वह प्रतीक्षा में रत रही कि कब सवेरा हो। तीसरे पहर उसे रुपये लेकर ओझे के पास जाना था। वह चाहती थी कि समय पंख लगाकर उड़ जाय और जल्दी से वह घड़ी आ पहुंचे जब कि वह डालीगंज के लिये रवाना हो।

किसी तरह रात वीती, प्रभात आया। सावित्री प्रफुल्लित थी। तीसरे पहर उसने कुमारी से कहा—"मैं पड़ोस में जा रही हूं, अभी थोड़ी देर में लौट आऊंगी।"

उत्तर में कुमारी मुस्करा दी। यही उसकी अनुमति थी। सावित्री खुशी-खुशी घर से चल दी। वह जब बाहर आई तो संतोष की सांस ली। आज पड़ोसिन साथ नहीं थी। वह अकेले ही डालीगंज की ओर चल दी।

रिक्शे पर बैठी सावित्री सोचती जा रही थी कि बस आज ही मेरी किस्मत का फैसला हो जायेगा। न रहेगा बांस और न बजेगी वंशी। कुमारी मेरे लिये एक कांटा है। मैं उस कांटे को दूर करके रहूंगी। जब तक वह मेरे

साथ है, वे मेरी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखेंगे। काश ! वह न होती तो सोने में सुहागा था। फिर याद आती है पुरानी बात कि एक म्यांन में दो तलवारे नहीं रहतीं। कहावत तो यहां तक प्रचलित है कि सौत मिट्टी की भी नहीं भली होती। मुझे यह मालूम होता है कि एक दिन वह आयेगा जब कुमारी पीहर से बुलायी जायेगी और वह मेरी छाती पर रहेगी। कैसे थे मां-बाप जिन्होंने एक स्त्री रहते हुये दूसरा व्याह कर दिया। यह अर्थ-प्रधान युग है। शादी-व्याह में लोग वर बाद में देखते हैं, घर पहले। वही मेरे साथ हुआ। घराना बड़ा था इसलिये व्याह कर दिया गया। बरबादी मेरी हुयी। ठीक ही कहा जाता था कि मां-बाप जन्म देकर कर्म के साथी नहीं होते।

सावित्री डालीगंज की ओर बढ़ रही थी। उसके मन में विचारों की बाढ़ सी आ रही थी कि ओझा कहता था कि जैसे ही मैं नींबू काटूंगा, वैसे ही तुम्हारी सौत का कलेजा भी कट जायेगा। जब तुम घर पहुंचोगी तो वह तुमको मरी मिलेगी। ईश्वर ! अगर कहीं मेरा यह सपना साकार हो गया, तो मैं घी के दिये जलाऊंगी और मंगल गाऊंगी।

इस तरह सावित्री मन ही मन मगन थी। वह पचास ही नहीं बल्कि पांच रुपये ज्यादा लायी थी। यह था ओझा का पुरस्कार। अब दिन ढल रहा था और सांझ का धुंधलापन धीरे-धीरे धरती पर उतर रहा था। दिशायें गीत गा रही थीं। पक्षियों का कलरव-गान सर्वत्र गूंज रहा था। दिन जा रहा था। यह सांझ की वेला थी इसीलिये सावित्री अत्यन्त प्रसन्न थी। वह प्रफुल्लित थी कि आज वह अपने काम में पूर्णतया सफल हो जायेगी। उसमें विवेक था लेकिन लंगड़ा क्योंकि वह केवल उसके स्वार्थ ही तक सीमित था।

बेलीगारद का चौराहा पार कर सावित्री लोहे के पुल पर आयी। यहां से डालीगंज सामने ही दिखलायी दे रहा था। वह आगे जा पुल के पास वाले चौराहे पर उतर गयी। रिक्शेवाले को पैसे दे एक गली के अन्दर प्रविष्ट हुई। यह पुरानी बस्ती थी। अधिकांश घर पुराने ही ढंग के बने थे। सावित्री गलियां और कूचे पार करती हुई ओझे के घर गयी, तो उसने देखा कि वह बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

जाते ही सावित्री ने रुपये ओझे के हाथ पर रख दिये। फिर उसके सम्मुख रोने का अभिनय करने लगी। ओझा मुस्कराया। उसने ढाढ़स बंधाया और कहा कि तुम चिन्ता क्यों करती हो। अभी देखो। पलक मारते जादू

होता है। जब वह कुमारी खतम हो जायेगी, तभी तुमसे जाने को कहूंगा।

सावित्री मन ही मन फूली नहीं समा रही थी कि आज उसे मन चाहे फल की प्राप्ति हो रही है। वह आंखें मूंद कर बैठ गयी और ओझा मंत्र पढ़ने लगा। उसने कहा देखो जब तक कहूं न आंखें मत खोलना नहीं तो काम बिगड़ जायेगा।

अब रात स्पष्ट हो आयी थी। यह कृष्ण पक्ष की रजनी थी। तारों से भरी एकदम काली। ओझा होंठ बुदबुदाता, बार-बार चावल के दाने सावित्री पर फेंकता। वह देर तक यह नाटक करता रहा। सावित्री बैठे-बैठे ऊब गयी एक बार उसने पूछा भी कि बाबा अब आंखें खोलूं। मेरा जी घबड़ा रहा है। इस पर ओझा तपाक से बोला—"अभी नहीं। नहीं तो सब खेल बिगड़ जायेगा।"

सावित्री मन मार कर रह गयी। उसने कुछ भी नहीं कहा और ओझे के भावी आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

धीरे-धीरे एक घण्टा हो गया और ओझे ने कुछ भी नहीं कहा। सावित्रीं आंखें खोलना चाहती थी लेकिन डर रही थी कि कहीं किया-धरा सब मिट्टी न हो जाय और उसके रुपये भी चले जायं। इसीलिये वह मौन रही और ओझा कभी बाहर जाता, कभी अन्दर आकर बैठ जाता। ऐसा लगता था कि जैसे वह किसी का इन्तजार कर रहा है।

सावित्री बैठे ही बैठे अन्तर्द्वन्द्व में डूब गयी कि देर न हो जाय। जो वे (अनिल) दूकान से आ जांय। यों अगर आ भी गये तो कुमारी बतला देगी कि मैं पड़ोस में गयी हूं। वह पूछे या न पूछे उससे पहले ही मैं भूमिका बांध दूंगी कि अमीनाबाद महाबीर जी के मन्दिर में चली गयी थी। बस फिर इसके आगे कोई नहीं पूछेगा। कितना आसान है मर्दों का घर से बाहर निकलना उनसे कोई नहीं पूछता कि तुम कहां गये थे। इतनी देर कहां लगायी। स्त्रियां तो अकेली घर से कहीं जाती नहीं और जाती भी हैं तो दिन में। रात में उनका जाना एक समस्या बन जाता है। वही परिस्थिति मेरे साथ है। मैं नहीं जानती थी कि यहां इतनी देर लग जायेगी और मुझे आंखें बन्द करके बैठना पड़ेगा। खैर कोई बात नहीं। अब जब आयी हूं तो इसका फैसला ही करके जाऊंगी। इसके अलावा अन्य कोई मार्ग भी तो सम्मुख नहीं है। मरता क्या न करता। मजबूरी है इसीलिये चुपचाप बैठी हूं।

सावित्री असमंजस में डूबी बैठी थी। उसके मन में विचारों का तारतम्य चल रहा था। वह कभी कुछ सोचती और कभी कुछ। वह ऊब-ऊब कर सासें लेती और मन ही मन सोचती कि मैं कहां से कहां आ फंसी। पड़ो-सिन की बात न मानती तो अच्छा था। कितनी देर हो गयी। यह ओझा मुझे उल्लू बनाये बैठा है। अगर कहीं अधिक देर हो गयी तो घर में सब लोग क्या कहेंगे।

इसी तरह सावित्री द्विविधा में पड़ी रही। समय आगे बढ़ता रहा और ओझे ने उससे आंखें खोलने को नहीं कहा। वह बैठे-बैठे जैसे जड़ बन गयी थी।

१७

देर हो गयी, सावित्री ओझे की राह देखती रही कि वह अब आंखें खोलने को कहता लेकिन नहीं। कुछ देर बाद उसने आदेश दिया कि इनकी आंखों पर पट्टी बांध दो। सावित्री मूक बधिर सी बैठी रही। उसकी आँखों पर पट्टी बांध दी गयी। वह कुछ कहना चाहती थी तब तक किसी ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और पीछे से किसी ने उसके मुंह पर कसकर कपड़ा बांध दिया। वह छटपटायी, उसने पैर फड़फड़ाये; लेकिन सब व्यर्थ। किसी ने उसे कसकर धक्का दिया। वह मुंह के बल जमीन पर गिर पडी।

यद्यपि सावित्री के मुंह पर कपड़ा बंधा था लेकिन नथुने खुले थे जिससे वह साँस ले रही थी। उसे इस बात का बोध हुआ कि किसी ने उसके कानों से दोनों टाप्स निकाल लिये हैं और ऐसे ही लाकेट भी किसी ने झटका

देकर तोड़ लिया है। उसके हाथों के कंगन भी निकाल लिये गये। और उसका बटुआ जो कंधे में लटक रहा था, उसमें रूपये थे। वे भी किसी ने ले लिये। सावित्री व्याकुल हो उठी। उसकी परेशानी का ओर छोर नहीं रहा। वह सोचने लगी कि अब मैं घर कौन सा मुंह लेकर जाऊँगी। एक तो देर हो गयी है, दूसरे जेवर चले गये। यही नहीं इसके बाद देखो वे लोग क्या करते हैं। जब इनकी नीयत खराब हो चुकी है तो फिर कौन भरोसा ? हो सकता है ये लोग मेरी जान ही ले लें। भगवान मैं कहां आकर यहां फंस गयी, अब तू ही मेरी लाज बचा सकता है।

इस प्रकार सावित्री अपने में बहुत दुःखी थी। वह पर कटे परिन्दे की तरह पैर फड़फड़ाती, हाथ पटकती, सिर धुनती, मगर कोई भी उसकी ओर ध्यान नहीं देता। इस तरह बहुत देर हो गयी। सावित्री उसी स्थिति में पड़ी रही। उसकी आँखों से आँसू धार बन कर बह रहे थे। वह विवश थी, उन्हें पोंछ भी नहीं सकती। वह मन ही मन इतना भयभीत हो गयी थी कि बार-बार ईश्वर से विनय करती कि भगवान मुझे मौत दे मैं यह काला मुंह लेकर घर नहीं जाऊँगी, गोमती में डूबकर जान दे दूंगी।

थोड़ी देर बाद सावित्री समझ गयी कि किसी कपड़े में उसको रखकर गठरी बांधी जा रही है। वह सनाका खा गयी, उसे गश आ गया वह बेहोश हो गयी।

इसके बाद क्या हुआ सावित्री को इसका कुछ भी पता नहीं। एक आदमी ने सिर पर वह गठरी रखी। दूसरा उसके साथ चला। वे दोनों गोमती के किनारे ही किनारे चल कर बहुत दूर निकल गये।

एक आदमी ने कहा कि अब तो काफी दूर निकल आये हैं, यही छोड़ दी जाय गठरी और हम लोग चलें। दूसरे व्यक्ति ने उसका समर्थन किया। दोनों की राय मिल गयी और गठरी गोमती के बायें किनारे पर रख दी गयी।

दोनों आदमी जब गठरी रख कर चले तो वे बार-बार पीछे घूमकर देखते रहे। गठरी जहाँ की तहाँ रखी थी। वह सफेद चादर में बंधी थी। उस समय नदी के किनारे पूरा सन्नाटा था। अंधेरी रात साँय-साँय कर रही थी। यद्यपि जाड़े की अभी शुरुआत थी; लेकिन दरया के किनारे अच्छी खासी सर्दी थी। कभी-कभी बगल की सड़क से कोई रिक्शा या मोटर निकल जाती किन्तु किसी का भी ध्यान उस ओर नहीं जाता। जाता भी कैसे क्योंकि

अँधेरा खूब घना था।

गठरी में बंधी सावित्री अब तक बेहोश थी उसे कुछ भी पता नहीं कि वह इस समय कहां है और किस स्थिति में है।

●

१८

अब रात आधी बीत चुकी थी। आसमान में तारे जुगनू से चमक रहे थे। हवा कुछ अधिक ठण्डी हो चुकी थी। किसी पेड़ पर उल्लू बोल रहा था। तो कहीं दूसरे पेड़ों पर पक्षी पर फड़फड़ाते। ऐसा लगता मानों उन्हें कोई त्रास दे रहा हो। दूर कहीं गश्त के सिपाहियों की सीटियां बजतीं। तो कहीं कुत्ते भूंकते, आपस में लड़ते। चारों ओर सन्नाटा था। काली भयावनी रात्रि सांय-सांय कर रही थी।

कुछ देर बाद उधर से डाकुओं का एक गिरोह निकला। सरदार सबसे आगे था और सब बातें करते हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। ये लोग शायद कहीं दूर से आ रहे थे। इनके पास हथियार भी थे। पिस्तौल, करौ-लियां और चाकू। आगे किसी मोटर-गाड़ी की रोशनी दिखाई दी तो सब सब पेड़ों की आड़ में छिप गए। कुछ देर बाद फिर सब एकत्रित हुए और टार्च जलाकर उस जगह का नकशा देखने लगे जहां उन्हें अभी जाकर डाका डालना था। सहसा तभी सरदार की निगाह उसी गठरी पर गयी। वह चौंक उठा और साथियों से कहने लगा कि—"वह देखो, या तो इस गठरी में लाश है या फिर चोरों ने लाकर रखी है, यहीं कहीं छिपे होंगे। हम लोगों के जाने के बाद बटवारा करेंगे। कोई देखो तो इसमें क्या है?"

डाकू सरदार की आज्ञा का तत्काल ही पालन हुआ। एक डाकू

ने गठरी खोली। ऐं ! यह क्या ? वह हँसकर अलग खड़ा हो गया। अन्य साथी आगे आये और वे भी गठरी को देखने लगे। पहले तो उन्हें भ्रम हुआ कि यह मरी हुई है किन्तु जब उन्होंने उसकी नब्ज देखी तो पाया कि सांस चल रही है और वह जिन्दा है। उन्होंने उसे फौरन ही बन्धन मुक्त किया। उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे गए। धीरे-धीरे उसने आंखें खोलीं और कई लोगों को अपने सामने खड़ा देखकर वह दहशत खा गयी कि ये वही लोग हैं जो ओझे के यहां से उठाकर उसे यहां लाये। उसने एक चीख मारी और फिर बेहोश हो गयी।

तब डाकू सरदार ने साथियों से कहा—"यह स्त्री घबड़ायी हुयी है इसीलिए डर गयी, और मूर्छित हो गयी है। लाओ थोड़ा पानी ले आओ मैं इसे पुनः होश में लाता हूं। जब आंख खोले सब लोग सामने से हट जाना केवल मैं उससे बात करूँगा, देखूं क्या बतलाती है ?"

इस तरह सरदार की आज्ञा का फौरन ही पालन किया गया। युवती सावित्री ने जब आखें खोलीं तो उसने देखा कि एक दोहरी देह का एक रोबीला युवक उसके सामने खड़ा है। वह कुछ बोल नहीं पायी एकटक उसकी ओर देखती भर रही। युवक डाकू सरदार ने उसे आश्वासन दिया कि "डरो मत मुझसे, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। बतला दूं मैं डाकू सरदार हूं। दुखी और गरीब मनुष्यों की मैं मदद करता हूं। सताता ऐसे ही लोगों को हूं जो निर्धनों का शोषण करते हैं। यहां तुम गठरी में बँधी पड़ी थीं, बेहोश थीं, तुम्हें यहां कौन लाया, तुम किस तरह आयीं ? मुझे बतलाओ मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

सावित्री देर तक नहीं बोली। वह एकटक सरदार की ओर देखती रही। फिर कुछ ढाढ़स बँधा और वह रो-रोकर उसे अपना हाल बतलाने लगी।

डाकू सरदार संगीत सावित्री का हाल सुन सहानुभूति से भरकर वह सान्त्वनापूर्ण शब्दों में धीरे-धीरे कहने लगा—"तुम दूसरे का अहित चाहती थी, इसीलिए अनिष्ट तुमपर चारों ओर से घेरा डालकर खड़ा हो गया। चलो, मैं तुम्हें अभी घर पहूंचा दूं लेकिन एक शर्त है कि.........।"

"वह क्या ?" सावित्री जिज्ञासु हो उठी।

तब सुडौल संगीत किंचित मुस्कराया और सरल स्वर में बोला—

"फिर कभी ऐसा मत करना। मुझे वचन दो तो मैं तुम्हें अभी घर पहुंचा दूं।"

सावित्री ने अनुभव किया कि यह व्यक्ति अनुभवशील तथा पढ़ा-लिखा है। वह संशय में डूब गयी, फिर एक लम्बी सांस ले अपनी ग्रीवा को नत कर मुर्दा स्वर में कहने लगी—"लेकिन घर जाऊँगी कौन सा मुंह लेकर। मेरी समझ में नहीं आता है। गहने ओझे ने उतार लिए। इसके अलावा रात बहुत हो गई है।"

"गहने मैं अभी चलकर ओझे से दिलवाता हूं और तुम्हारे पति तथा सौत से भी प्रार्थना करूँगा कि वे लोग तुम्हें क्षमाकर पुनः स्वीकार कर लें मैं········।"

अभी सरदार कह ही पाया था कि सावित्री बीच ही में बोल पड़ी—"मैं वादा करती हूं कि भविष्य में अब कभी ऐसी भूल नहीं करूँगी, जिससे प्रतिष्ठा में बट्टा लगे और जगहंसाई हो। आप का परिचय प्राप्त कर सकती हूं कि आप कौन हैं ? आप···········।"

इस पर डाकू सरदार हँसा, फिर सहानुभूति स्वर में कहने लगा—"मुझे संगीत कुमार कहते हैं। परिस्थितिवश आज मैं इस दस्यु-दल का प्रधान हूं। मेरा काम गरीबों को सताना नहीं उन्हें सहारा देकर ऊपर उठाना है। मैं परेशान उन्हीं लोगों को करता हूं जिनके द्वारा जनता का कभी हित नहीं हो सकता। मैं तुम्हारी पूरी-पूरी सहायता करूँगा। मैं···········।"

डाकू सरदार संगीत बोलते-बोलते बीच में ही रुक गया; क्योंकि दूर सामने डालीगंज की ओर गश्त के सिपाहियों की सीटियां सुनाई दे रही थीं। वह सहसा ठिठका, और फिर उधर सामने ही आंखें फाड़कर देखता रह गया।

इतने में सीटियों का शोर नजदीक आता जान पड़ा। संगीत सतर्क हो गया। उसने अपने साथियों की ओर एक दृष्टि डाली, फिर चौंक कर सामने की ओर देखने लगा।

सचमुच सिपाही उसी ओर आ रहे थे। डाकू सरदार चौकन्ना हो उसने अपने साथियों से कहा—"सावधान गश्त के सिपाही इधर ही आ रहे हैं।"

यह सुनते ही प्रत्येक की दृष्टि उस ओर उठ गई। सावित्री समझ गई कि पुलिस आ रही है, इसलिए ये डाकू लोग यहां से भाग जाना चाहते हैं। वह सहम गई और सोचने लगी कि यह भी हो सकता मैं पुलिस के चंगुल

में फँस जाऊँ। तब तो मेरी बहुत बड़ी बदनामी होगी। सुना है नीति पर चलने वाले डाकू कभी अन्याय नहीं करते हैं। संगीत से मेरा हित हो सकता है; लेकिन पुलिस बाल की खाल निकालेगी। वह मुझे पकड़ेगी तो खबर अखबारों में छपेगी। इस बदनामी से मैं कैसे बचूंगी भगवान। तू ही रक्षा कर ईश्वर। तू ही पालनहार है और तू ही परवर दिगार।

सावित्री सहसा चौंक पड़ी। उसने देखा कि सिपाहियो के टार्च की रोशनी उस पर पड़ रही है। उनकी सीटियाँ जोर-जोर से बज रही थीं। सरदार ने इशारा किया और डाकू बात की बात में वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गए। जब वह जाने लगा तो जाते-जाते सावित्री से कहता गया कि अगर तुम दौड़ सकती हो तो मेरे साथ आओ, वरना चादर ओढ़कर यहीं पड़ी रहो। पुलिस चली जाने के बाद मैं आऊँगा। तब तक·········।

सरदार की बात अधूरी ही रह गई क्योंकि सिपाहियों ने वीराने में कुछ लोगों को खड़े देखा तो वे इधर दौड़ पडे। डाकू सरदार संगीत सिर-पर पैर रखकर भागा।

और सावित्री, वह हो गयी किंकर्तव्यविमूढ़। उसने घबड़ाहट में ओढ़ने के लिए चादर उठायी तो उसके हाथ कांपने लगे। वह निश्चेष्ट सी हो गयी। उसने कानों पर अपने दोनों हाथ रख लिए। उसके माथे पर पसीने की बूंदें आ गयीं।

अब पुलिस उस स्थान पर आ गइ थी जहां सावित्री बैठी थी। सिपाही उन्हें इधर-उधर तलाश करने लगे। एक ने सावित्री को टोका तो उत्तर में उसकी घिग्घी बँध गई और देखते ही देखते वह चीखी, और मूर्छित हो गयी।

११

थोड़ी देर बाद जब सावित्री होश में आई तो उसने देखा कि उसको चारों ओर से पुलिस के सिपाही घेरे खड़े हैं। वह बुत बन गई। उसके मुंह से बोल नहीं निकला। यह आठ कानिस्टिबिलों का दस्ता था, जिसका मुखिया एक तीन बिल्लेवाला चीफ़ था। डाकू सब भाग गये थे। वे दृष्टि से ऐसे ओझल हुये कि किसी को दिखलाई ही नहीं दिये। चीफ कानिस्टिबिल ने डाँटकर सावित्री से पूछा—"तुम कौन हो ? ये लोग कौन थे ? शायद डाकू तभी तो पुलिस को देखते ही भाग गये। तुम······।"

सावित्री अब भय से थर-थर काँपने लगी। उसने चीफ़ को कुछ भी जवाब नहीं दिया। अब रात काफी हो गई थी। उससे पूछ-जाँच हुई। लेकिन वह मौन ही रही। उसके होंठ कई बार हिले मगर वाणी वाचाल नहीं हुई। इससे पुलिस का प्रधान इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अवश्य यह स्त्री डाकुओं के दल की है। वह रोब भरे स्वर में उसे अपराधिनी ठहराते हुये बोला—"इसका मतलब यह हुआ कि तुम डाकुओं के गिरोह की हो। तभी कुछ नहीं बोल रही हो। ठीक है। मैं अभी तुम्हें थाने ले चलता हूँ।"

"थाने !" सावित्री पर अचानक बिजली सी गिर पड़ी।

एक टार्च सिपाही के हाथ में सधी जल रही थी। उसका फोकस सावित्री के मुंह पर पड़ रहा था। उसने चीफ की ओर देखा फिर व्याकुल होकर बोली—"मैं थाने नहीं जाऊँगी। मैं डाकुओं के गिरोह की नहीं हूँ। भगवान के लिए छोड़ दीजिए। मैं अपने घर जाऊंगी। मैं······।"

कुछ सिपाही मुस्कराए और चीफ व्यंग पूर्वक हंसकर बोला, "तुम आवारा हो तुम्हारा कोई घर नहीं है। पुलिस को धोखा देती हो। जल्दी बताओ डाकू कहां गए और उनका अड्डा कहां है।"

"अड्डा ! मैं कुछ नही जानती हूँ मेरा नाम सावित्री है। मैं गणेश-गंज में रहती हूँ। मेरे पति अनिल कुमार उनकी दूकान हजरतगंज में है वे पेन्ट वार्निश का काम करते हैं। लेकिन मैं वहाँ जाना नहीं चाहती हूँ। मुझसे गल्तियाँ हो गई हैं। शायद वह माफ़ नहीं करेंगे। मेरे गहनें। डालीगंज के ओझे ने छीन लिए। उसने रूपए भी ले लिए। मैं अपनी सौत के लिए जादू टोना कराने आयी थी।

"चीफ साहब मुझे छोड़ दीजिए मैं डाकुओं को नहीं जानती हूँ।" यह कह कर सावित्री फूट-फूट कर रोने लगी।

सिपाही एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। हल्के जाड़े की ऋतु थी। झिल्लियाँ झनकार रही थी। गोमती का पानी कभी-कभी करता छर-छर, कभी कोई ट्रक गुजरता सड़क से तो दूर कहीं पक्षी पेड़ों पर पंख फड़फड़ाते। चीफ हँसा और सावित्री की भर्त्सना कर बोला—"खूब। तुम उल्लू बनाना अच्छी तरह जानती हो। चलो पहले थाने चलो तुम्हारे बयान वहीं लिखे जाएंगे। अगर यह सच है, कि तुम गणेशगंज में रहती हो तो तुम्हें तुम्हारे पति को सौंप दिया जायगा। और अगर दाल में काला हुआ तुम डाकुओं के दल की निकली तो तुम पर मुकदमा चलेगा। कानून तुम्हें माफ नहीं करेगा। मैं पूछता हूँ, कि आखिर यह डाकू तुम्हारे पास क्यों खड़े थे, तुमसे क्या कह रहे थे। जरूर उनसे तुम्हारा कुछ लगाव है यह मैं मान नहीं सकता हूँ।"

"भगवान की कसम आपकी कसम चीफ साहब मैं बिलकुल सच कह रही हूँ। किस्सा यह है कि मेरे पति एक बहुत बड़े जमीनदार के लड़के हैं। उनका ब्याह मुझसे पहले जिस स्त्री से हुआ वह बड़ी अयोग्य थी। इसीलिए चिढ़कर उन्होंने मुझसे ब्याह किया। मेरे एक पुत्र भी है। उसका नाम है अशोक। सौत कुमारी मुझे बहुत कष्ट देती है। किसी ने कहा था कि डाली गंज में एक ओझा रहता है। वह जन्तर-मन्तर जानता है ऐसा कर देगा कि सौत तुम्हारी गुलाम बन जायगी सो उसने मुझसे रूपए ले लिए, जेवर भी छीन लिए और फिर उसी के आदमी मुझे गठरी में बाँध कर गोमती के किनारे छोड़ गए। मैं दहशत खा गई थी, बेहोश थी। तब तक इधर से डाकुओं का दल निकला। उन लोगों ने गठरी खोली मुझे होश में लाया गया। मैंने डाकू सरदार को अपना सब हाल बतलाया। वह मेरी सहायता करने को तैयार था तब तक आप लोग आ गए। मैं फिर बेहोश हो गई। क्षमा कीजिए विश्वास कीजिए मैं भले घर की बेटी हूँ और बड़े घर की बहू। मेरी लाज अब आपके हाथ में है चीफ साहब, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए।"

सावित्री यह सब एक साँस में ही कह गयी। उसके आँखों से आँसू धार बनकर बह रहे थे। सिसकियाँ लेती बीच-बीच जिससे रात का सन्नाटा भी सुबक उठता। चीफ मौन हो गया। वह कुछ सोचने लगा। सिपाही भी हैरत में थे यह स्त्री अच्छी समस्या बन गई। न जाने डाकुओं के दल की है या कोई

शरीफ औरत । एक ने दूसरे के कान में कहा तनिक धीरे से कि यह भले घर की वेटी है बड़े घर की वहू है तो आधी रात को इस सुनसान में क्या करनें आयी । मामला कुछ और है यार औरत वेढव मालूम होती है ।

चीफ की मौन समाधि अव भी भंग नहीं हुयी थी । आकाश में तारे जुगनू से चमक रहे थे उनके वीच वन रहा था उजला सा पथ । यह आकाश गंगा थी । दूसरी ओर उत्तर का गगन अपनी गोद में ध्रुव तारे को लिए वैठा था । वह दिशा ज्ञान का मूल प्रतीक था और रजनी कह रही थी शीतल डोल रही पुरवाई से कि मेरी जवानी ढल रही है । जव तक मैं वूढ़ी न हो जाऊँ तुम ऐसे ही वहती रहना ।

सहसा पानी में कोई झल से कूदा । टार्च की रोशनी उधर घूम गई । वह कुछ नहीं एक छोटा सा कगार फटा था उसी की मिट्टी जल में गिरी थी । पीछे निकट वर्ती किसी पेंड़ पर वैठा उल्लू अशुभ वाणी वोल रहा था । सावित्री घवड़ाई तभी चीफ ने उसे टोक दिया । वह वोला—"उठो खड़ी हो तुम्हे थाने चलना है ।"

"मैं नहीं जाऊँगी मैंने कोई कसूर नहीं किया । आप लोग जाते क्यों नहीं । आप अपना गस्त दीजिए और मुझे मेरी राह जाने दीजिए । अगर थाने ले चलना है तो मुझे गोमती में डूव जाने दीजिए । मैं मुंह कलंक की कालिमा लगाकर जिंदा नहीं रह सकती हूँ ।"

यह कहा सावित्री ने । वह रोई और भर भरा कर चीफ के पैरों पर गिर पड़ी किन्तु चीफ को उसकी दशा पर तरस नहीं आया । वह विवश था । कानून उसके साथ था । उसने तेज गले से कहा—"तुम चलती हो या नहीं वर्ना मुझे जवरदस्ती करनी पड़ेगी ।"

"जवरदस्ती । क्या आप मुझे हथकड़ी डाल कर ले जाना चाहते हैं । मैं हर्रगिज नहीं जाऊंगी आप मुझे नहीं ले जा।सकते हैं ।"

सावित्री के मुंह से यह सुनते ही चीफ आग ववूला हो उठा । वह उठती उम्र का था जिससे स्वाभाविक है । उसने कस कर डांटा और तनिक आगे वढ़ कठोर स्वर में वोला—"उठकर खड़ी हो और मेरे साथ चलो । यही एक रास्ता है ।"

"लेकिन चीफ साहव मेरी वात तो सुनिए । आप के भी घर में वेटी वहन है आप मुझसे उम्र में वड़े हैं । अगर मैं थाने गई तो उस वदनामी

से मेरे लोक परलोक दोनों बिगड़ जाएंगे। मुझे……।"

अभी सावित्री इतना ही कह पायी थी कि चीफ भड़क उठा। वह अपने हाथ का डंडा जमीन पर पटक कर बोला—"बक-बक मत करो, जो कहता हूँ वह करो।" यह कह कर उसने सिपाहियों की ओर देखा और एक से बोला—"देखते क्या हो ले चलो इसे थाने।"

सिपाहियों ने सावित्री को धमकाया उसे भय दिखलाया। वह मजबूर हो गई और आंसू बहाती हुई उनके साथ चल दी।

इस समय सावित्री की स्थिति यह थी कि वह पैर जमीन पर रखती तो धमक उसके कलेजे में लगती। वह सोचती कि मैं कुल वधू बन कर आयी थी और आज एक आवारा की तरह जा रही हूँ थाने। नर्क कहीं और नहीं धरती पर और जीते जी मनुष्य को मिल जाता स्वर्ग भी यहीं है लेकिन वह कुमारी जैसी क्षमाशील स्त्रियों को ही प्राप्त है। मैंने उसे विष दिया उसने मुझे क्षमा कर दिया। अब भी अगर मेरी सहायता कोई कर सकता है तो कुमारी। काश! धरती फट जाती और मैं उसमें समा जाती। मुझे लगता है कि मैं पुरातन युग की वह पिछड़ी हुई नारी हूँ जिसे दासी के रूप में बाजार में बिकना पड़ता था। जैसा किया है वैसा मिल रहा है फिर शिकायत क्यों?

सिपाही लोहे के पुल पर पहुंच चुके थे। सावित्री उनके बीच में चल रही थी। उसने सुना एक सिपाही दूसरे साथी के कान में कह रहा था—"आँखें खोल कर चलो डाकू अगल बगल ही लगे होंगे। देखना तलाशी में इस औरत के पास करौली या पिस्तौल जरूर निकलेगी।

सावित्री ने यह सुना तो उसके रोएं खड़े हो गए और वह सन्नाटे में आ गयी।

२०

सावित्री को गए वहुत देर हो गयी थी। कुमारी उसकी राह देखती रही। जव झुटपुट धरती पर उतरा और अँधेरे में उजाले की गोद भरी तो उस में एक दीर्घ उच्छवास ले नीले शून्य पर दृष्टि डाली उसमें चांदी के फूल खिल चुके थे और वह नीला सागर कुछ कुछ श्याम लग रहा था। वह उठी आंगन में आयी वरामदे में टहली, वार-वार दरवाजे पर जाती झांक कर लौट जाती। अशोक ने एक वार उससे पूछा भी कि वड़ी मां कहां गई है अभी आई नहीं है आज उनको घर में मत घुसने देना वड़ी खराव है पापा से लड़ती है।

कुमारी ने वच्चे को धीरे से डांट दिया उसे समझा कर फिर उसने रसोई चढ़ा दी जिसमें आंच तेज हो गई सब्जी जल गई परौंठे भी कोई कच्चे और कोई पक्के रहे। वज्रपात हो गया कुमारी पर, अनिल दुकान से आ गया किन्तु सावित्री अव तक नहीं लौटी।

अनिल के लिए सावित्री का होना, न होना दोनों ही बरावर था वह कभी नहीं पूछता और कभी सावित्री सामने पड़ गई तो तीन कोने का मुंह वना लेता।

कुमारी ने पति को खाना परोसा, अशोक भी वाप के साथ खाने वैठा। उसने फिर टोक दिया कुमारी को कि वड़ी माँ अभी तक नहीं आयी है अव उनको भगा देना। पापा को नहीं वताया यह कल भी गई थी और आज लौटी ही नहीं।

इस तरह कुमारी पति को नहीं वतलाना चाहती थी। वह उसे अशोक द्वारा ज्ञात हो गया। उसने कुछ भी नही कहा रात आधी हो गई कुमारी ने खाना नहीं खाया। उसने सुना पति कह रहा था कि अव सावित्री के आंख का पानी मर गया है, वह निर्लज्ज हो गयी, तभी तो आधी-आधी रात तक घूमती है आज आए तो उससे पूछना और साफ-साफ कह देना कि इस घर के किवाड़े वन्द हैं। वह अपने माइके जा सकती है। मैं उसे घर में नहीं रक्खूंगा।

कुमारी यह शव्द सुन कर सहम गई वह उठकर वैठ गई। अशोक सो गया था वत्ती वन्द थी वह चुपके से अपने विस्तर से उठी और धीरे-धीरे

दवे पांव जाकर बाहर की कुन्डी खोली। दूर तक कहीं सावित्री उसे दिखायी न पड़ी। झींगुर रात के सन्नाटे को भंग कर रहे थे सड़क रही थी सो, वह धीरे-धीरे सांस ले रही थी। कुमारी देर तक खड़ी रही उसकी आंखों में आंसू भर आये। वह जब कुंडी बन्द करके अन्दर की ओर लौटी उसका हृदय कचोट रहा था और अन्त:करण कह रहा था कि "एक तो करेला, दूसरे नीम चढ़ा।" सावित्री को यों ही पति का प्यार प्राप्त नहीं था उस पर उसने यह क्या किया वह कहां चली गई, कहीं डूब तो नहीं मरी सावित्री। नारी स्वभाव वड़ा विचित्र होता है, उसकी थाह कभी नही मिलती है।

रात आगे बढ़ रही थी अनिल को सावित्री की परवाह बिल्कुल नहीं थी। इसीलिए कुछ देर उस पर सोच कर सो गया—कि वह जायगी कहां अपने बाप के घर, या ससुराल और कहां ठिकाना है सावित्री को। मुझे यह नाटक बिल्कुल पसंद नहीं है। अब न मैं सावित्री को लेने जाऊँगा और न उसे बुलाऊँगा ही। वह अगर यहां रही तो मैं घर छोड़ दूंगा, और कहीं नहीं वह इन्हीं दो जगहों में कहीं गई है। न पढ़ती है और न पिंजड़ा ही खाली करती, मैं तो तंग आ गया हूं इस स्त्री से ईश्वर उस बला से बचाये मैंने वड़ी भूल की जो दूसरा व्याह किया।

और कुमारी! वह धीर अधीर हो रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे वह। करवटें बदलती आसमान की ओर देखती, तारे गिनती, उसके मुंह से लम्बी-लम्बी सांसें निकलतीं, वह ऊबती और सोचने लगती कि सावित्री आखिर कहां गई घर में तो कुछ कहा-सुनी भी नहीं हुई, वे भी नहीं नाराज हुए। क्या गांव तो नहीं चली गई कहीं, एक्सीडेन्ट तो नहीं हो गया कहीं। किसी पड़ोसिन के साथ सिनेमा देखने नहीं चली गयी। तो भी अब तक आ जाती। ईश्वर उसे सद्‌बुद्धि दे वह बिल्कुल अज्ञान है, नादान है इतनी कि अपना भला-बुरा भी नहीं पहचानती।

आकाश में सप्तऋषि मण्डल आया और एक ओर को चला गया। शुक्र उदय हो गया और प्राची के गगन में सवेरे की आभा स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। मुर्गों की बांग सुनाई दी। कुमारी तो चौंक सी गई। जब मन्दिरों के घण्टे उसके कानों में पड़े आवाज सुनाई दी—प्रात:कालीन। उसके मुंह से निकला—"सावित्री तुम कहां हो, तुमने घर छोड़कर अच्छा नहीं किया।"

अनिल उठते ही सवेरे कुमारी के पास आया और चिंतित हो पूछने

लगा—"सावित्री नहीं आयी उसका क्या हुआ। तुम......।" [चांदी

"मुझसे पूछते हो, रात भर तो उसका नाम नहीं लिया। वह कहां है, किस हालत में है। मैं कहती हूं तुम्हें नींद कैसे आई जहां वहाँ मैं और मुझसे पूछते हो कि......"अभी कुमारी इतना ही कह पायी अनिल बीच में ही बोल उठा—"उसका नाम मत लो कुमारी। वह जाय जहन्नुम में। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की, वह दुष्ट प्रकृति की स्त्री है उसका मेरे साथ निर्वाह नहीं हो सकता।"

यह कह कर अनिल अपने कमरे की ओर चला गया। "पेपर, हेरल्ड और नवजीवन लेना बाबू।"

अखबार वाला यह कहने के साथ ही अँग्रेजी और हिन्दी दोनों दैनिक समाचार पत्र डाल गया। अनिल अनमना था। वह कमरे में इजी चेयर पर बैठा रहा उठा नहीं और कुमारी नवजीवन पढ़ने लगी कि शायद इस कहीं सावित्री का कोई समाचार हो। पहला पेज, दूसरा और तीसरे पर जह स्थानीय समाचार थे अचानक उसकी दृष्टि अटक गई, लिखा था कि रहस्यमय युवती। एक स्त्री जो अपना नाम सावित्री बतलाती है। वह गोमती के किनारे पकड़ी गई। की है। पुलिस का यह सन्देह पुष्ट है। वह डाकुओं के गिरोह उसका कथन है कि मेरा घर गणेशगंज मुहल्ले में है और मैं अनिल कुमार की पत्नी हूं। पुलिस मामले की जांच कर रही है कि यह वास्तव में डाकुओं के गिरोह की है या जो कुछ बतलाती है वह ठीक है।

कुमारी ने अखबार पढ़ा तो सन्न रह गयी। उसने पति को भी पढ़-र सुनाया। अनिल के कान खड़े हो गए, उसने अँग्रेजी का अखबार देखा फि ारी से कहने लगा—"इसमें यह भी लिखा हैं कि सावित्री ने अपने बयान में या है कि वह डालीगंज में किसी ओझे के घर गई थी। वहां उसके रुपये व सब छीन लिए गए। देखो कितनी नीच निकली सावित्री, अब मैं उसे घर नहीं रक्खूंगा। वद अच्छा वदनाम बुरा। अगर वह मेरे घर में रही प्रतिष्ठा में वट्टा लगेगा, यों ही लोग उँगली उठाते हैं, टीका-टिप्पणी। जैसे मैंने दूसरा व्याह नहीं एक अपराध किया हो।"

इस पर कुमारी ने पति को वहुत समझाया, वह दीन भाव से म घर में नहीं रक्खोगे तो सावित्री आखिर जायगी कहां। तुम कुल तो वह है लाज, अपनी प्रतिष्ठा अपने आप भंग करना मेरी समझ

में तो नहीं आता। जाओ जल्दी से थाने जाओ उसका पता करो और छुड़ा कर ले आओ। किसी को कानोकान मालूम न हो खूबसूरती इसी में है।"

इस पर अनिल कम्पात्मक हँसी हँसा, और धीरे से बोला—मुझ पर तुम्हारा यह जादू नहीं चल सकता कुमारी मैं सावित्री से आजिज हूं, उससे दूर भागता हूं।"

कुमारी को यह अच्छा नही लगा। वह अप्रतिभ सी हो गयी मुंह लटका कर बैठ गई। उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। इतने में ही बाहर की कुंडी खटकी और किवाड़ों पर दस्तक हुई। किसी ने पुकारा—"अनिल बाबू, अनिल कुमार।"

कुमारी दरवाजे पर गई तो वह एकदम सन्नाटे में आ गई, सामने पुलिस खड़ी थी। वह परिस्थिति समझ गई। उसने जल्दी से पति को भेजा और स्वयं भी चौखट पर आकर खड़ी हो गई। तब उसके माथे पर थोड़ा सा घूंघट था। देर तक अनिल की पुलिस इन्सपेक्टर से बातें होती रहीं। कुमारी सामने खड़ी थी इसलिए अनिल इन्कार नहीं कर पाया कि सावित्री उसकी पत्नी नहीं है। जब पुलिस ने कुमारी के बयान लिए तो वह सावित्री के लिए मार्ग स्पष्ट करती हुई बोली—"भला वह डाकुओं के पास क्या लेने जायेगी, वह कुछ भी नहीं जानती है दरोगा साहब, बहुत सीधी है अभी उसमें बचपना है किसी पड़ोसिन ने बहकाया होगा तभी वह डाली गंज ओझों के पास गई। आप उसको पकड़ कर बन्द कीजिए, उस ओझे को सजा दीजिये। सावित्री ने कुछ भी नहीं किया, वह निर्दोष है। आप गलत फहमी में न पड़ें उसका डाकुओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

इस तरह कुमारी ने बहुत समझाया पुलिस को और वह निरन्तर सावित्री के ही पक्ष में बोलती रही। अनिल चुप हो गया था उसे लग रहा था कि कुमारी मानवीय नहीं साक्षात् देवी है उसके और सावित्री के विचारों में जमीन आसमान का अन्तर है।

थोड़ी देर बाद पुलिस यह कह कर चली गई कि अनिल बाबू, आप किसी समय थाने आ जाइए अपनी स्त्री से बात कर लीजिए। जमानत मुश्किल से होगी। वह भी कचहरी में आप का आना जरूरी है। आप निशान देही करेंगे कि वह आप की स्त्री है।

अनिल ने हाँ द्योतक सिर हिलाया और कुमारी ने फौरन ही उसके

बदले पुलिस को जवाब दिया—"जरूर आऊँगी क्यों नहीं, आयेंगे दरोगा साहब, हमारी तो गरज।"

दरोगा कुमारी का मुंह देखने लगा और अनिल चुपचाप खड़ा रहा। माटी का बुत बना उस समय उसे लग रहा था कि वह कुमारी का जीवन है और कुमारी उसकी संज्ञा वह अन्दर आया। पुलिस चली गई थी। कुमारी ने उसे समझाया और जोर दिया कि वह जल्दी से थाने पहुंचे और सावित्री को छुड़ाकर ले आये। लेकिन अनिल ने यह सब मन्जूर नही किया। वह बोला—"जो रास्ता नहीं चलना है कुमारी, उसके लिए कोस मैं क्यों गिनूं। सावित्री का मुझसे या मेरे जीवन से कोई रिश्ता नहीं रहा। मैं उसे छुड़ाने जाऊँ, यह मेरी समझ में नहीं आता मैं उसकी अब सूरत भी नहीं देखना चाहता हूं कुमारी। बात कड़वी है, तुम्हें बुरी जरूर लगेगी।"

कुमारी चिढ़ गई। उसने पति से तर्क नहीं किया। जहां तक बन सका उसे समझाती ही रही, किन्तु परिणाम उसके अनुकूल नहीं निकला। वह निराश हो गई, और अकेले में बैठकर सोचने लगी कि जब घर वाले ही साथ नहीं देंगे, तो बाहर वाला कैसे अपना हो सकता है। सावित्री ने इतना बड़ा अपराध कर डाला है कि अब घर में उसके लिए जगह नहीं रही। यह सब मेरी समझ से बाहर है। मुझे लगता है कि आजकल के युग में आदमी का चाम नहीं, काम प्यारा है। दुनिया किसी भी तरह खुश नहीं रहती। वह बाल की खाल निकालती और कभी सीधे का उल्टा कर देती। सावित्री के साथ यह स्थिति (बुराई) हमेशा उसके पल्ले पड़ी हैं। कभी किसी ने उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखा। उसके मन का मर्म नहीं पूछा, उससे प्रेम से बातें नहीं कीं।

देर तक कुमारी गहरी विचारधारा में डूबी रहती रही, और अनिल भी भूल गया कि उसे दूकान जाना है। अभी सवेरे की चाय तक नहीं पी, वह अशोक के साथ जी बहला रहा था। अन्दर अँगीठी न जली और न स्टोव। कुमारी के घर में जैसे मातम छा रहा था। उसकी सूरत रोनी-रोनी सी हो रही थी, वह सोच रही थी कि अगर सावित्री की आज जमानत नही हुई तो क्या होगा। चर्चा फैलेगी, मुहल्ले की स्त्रियां मुझसे पूछेंगी तो मैं क्या जवाब दूंगी, यही कि वह पुलिस थाने में बंद है। क्या करूँ, मैं जाऊँ थाने और किसी तरह उसे छुड़ाकर ले आऊँ।

इस तरह सोचती विचारती रही कुमारी। वह किसी भी निष्कर्ष

पर नहीं पहुंच पायी। उसे रह-रह कर लग रहा था कि सावित्री को त्रास मिल रही है। वह हवालात में बन्द है। उसकी क्या स्थिति होगी। ईश्वर उसकी रक्षा करे।

दिन का पहला पहर अपने पयान पर था। मुंडेर की धूप छज्जे से आंगन की दीवालों पर उतरी। कुमारी अब भी पूर्ववत् बैठी थी। उसके मस्तिष्क में हलचल मच रही थी कि अब क्या होगा। काश! भगवान मुझे ही बुद्धि दे देता तो मैं सावित्री को घर से बाहर न जाने देती, होनहार बड़ा प्रबल है, उससे कोई नहीं बचा। भगवान लाज रख लेना, इस घर की नाव डगमगा रही है और मजधार में है।

इस प्रकार से कुमारी अपने में अस्त-व्यस्त थी, उसे वर्तमान समस्या का समुचित हल नहीं मिल रहा था।

२१

कुमारी देर तक विचारों में डूबी बैठी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। अनिल सिर से लेकर पांव तक चादर तान कर लेट रहा। उसे लिहाज आ रहा था कि वह घर से बाहर कैसे निकले। लोगों में चर्चा ज़रूर होगी कि सावित्री पुलिस-थाने में बन्द है। अशोक को कुछ खिला पिला कुमारी घर से बाहर निकली।

अनिल स्वयं हैरान था कि सावित्री ने उसकी प्रतिष्ठा पर बहुत बड़ा आघात किया है। वह सड़क पर अब सिर उठाकर नहीं चल सकता। लोग उसे देखकर कानाफूसी करेंगे, उंगली उठायेंगे। जो भूल जीवन में एक

वार हो जाती है मनुष्य उसके लिये जीवन भर पछताता है। मैंने दूसरा ब्याह नहीं किया, वल्कि अपने पैरों पर स्वयं आप कुल्हाड़ी मारी है। ईश्वर मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा।

कुमारी पड़ोस के एक घर में पहुंची। उसने पड़ोसिन को बतलाया कि सावित्री कल गोमती नहाने गई थी तो किसी ओझे ने उसके गहने छीन लिये। पुलिस ने उसपर यह इल्ज़ाम लगाया कि वह डाकुओं के दल की है। वह तहकीकात कर ली गई है। वे (अनिल) सावित्री पर बहुत नाराज हैं। कहते हैं कि मैं थाने नहीं जाऊंगा। सावित्री की जमानत होना जरूरी है। उसने इस तरह उस पड़ोसिन को खूब समझाया। पड़ोसिन कुमारी का सम्मान करती थी वह जानती थी कि सौत होते हुये भी कुमारी सावित्री को कितना चाहती है। उसके पति नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी कपड़े तथा गल्ले की आढ़त थी। वे थाने जाने के लिये सहज ही राजी हो गये। जब वे चलने लगे तो कुमारी ने उनके हाथ में सौ रुपये का एक नोट दिया।

यद्यपि पड़ोसी उस नोट को ले नहीं रहा था; लेकिन फिर भी कुमारी ने इस कार्य के लिये विवश कर दिया। वह घर आकर देवी-देवता मनाने लगी। अनिल अब भी वैसे ही लेटा था। कुमारी ने उसे नहीं टोका। वह गृह कार्यों में संलग्न हो गई। उसने जल्दी से स्टोव जलाया, उस पर चाय का पानी चढ़ा वह अशोक को तैयार करने लगी। उसने अभी मुंह तक नहीं धोया था।

जब चाय तैयार हो गई तो कुमारी ने पति को उठाया। उसकी मनः स्थिति अच्छी नहीं थी। उसने कहा कि आज मैं दूकान नहीं जाऊंगा। कुमारी ने भी इस पर उसका समर्थन किया। वह बोली—"क्या हुआ जो एक दिन दूकान नहीं खुलेगी। घर में बैठो।"

अनिल जब चाय पी चुका तो उसका चित्त कुछ स्थिर हुआ। वह धीरे-धीरे कुमारी की ओर उन्मुख हो कहने लगा—"तुमने देखा कुमारी कि सावित्री ने कितना घृणित काम किया है। वह अपनी बुद्धि-विवेक से नहीं जादू-टोने से हम लोगों को वश में करना चाहती है। वह ओझे के पास स्वयं गई होगी। यह बिल्कुल सही है। क्या करना चाहिये। मेरी तो इच्छा होती है कि उसकी सूरत भी न देखूं; लेकिन......।"

कहते-कहते अनिल सहसा चुप हो गया। तब कुमारी अवसर नहीं

चूकी। उसका लाभ उठाती हुई वह तनिक हंस कर बोली—"आखिर सोचा क्या है सावित्री के लिये ? क्या वह हवालात में ही बन्द रहेगी।"

"तो क्या करूं कुमारी ?" अनिल अधीर हो उठा।

"अब कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। मैंने सावित्री की जमानत के लिये पड़ोस के मानिक बाबू को भेज दिया है। वे कह गये हैं कि सावित्री को लेकर शीघ्र ही आ जायेंगे। वे………।"

अभी कुमारी इतना ही कह पाई थी कि अनिल व्याघात डाल कर बोल उठा—"अरे। मुझसे पूछा भी नहीं। खैर कोई बात नहीं। उन्हें कुछ रुपये दे देने थे। वे बड़े सज्जन आदमी हैं। आज तक उनके द्वारा किसी का अहित नहीं हुआ। वे……।"

"मैंने उन्हें सौ रुपये दे दिये हैं, ले नहीं रहे थे। सावित्री आती ही होगी। यह मेरा मन कह रहा है।"

कुमारी इस समय प्रसन्न थी। अनिल की भी स्थिति अच्छी थी; लेकिन न जाने क्यों सावित्री का नाम सुनते ही वह चौंक गया। वह रुष्ट होकर बोला—"मैं अब सावित्री को अपने घर में नहीं रखूंगा कुमारी। उसके माइके भेज दूंगा। वह मर्यादा के नाम पर कलंक है। वह घर में रहेगी तो लोग हंसेंगे।"

"दुनिया हंसती कब नहीं। वह किसी को भला और किसी को बुरा बतलाती है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि सावित्री सन्मार्ग पर चले और उसे सदबुद्धि आये।"

यह कह कर कुमारी कनखियों से पति की ओर देखने लगी। अशोक खेल में लगा था। कुमारी बार-बार दरवाजे की ओर देखती कि सावित्री अब आ रही है, तब आ रही है। अनिल भी उसकी बात सुनकर मौन हो गया। वह ठुड्डी पर हाथ रख कर कुछ सोचने लगा। इस समय दोपहर हो आई थी। दिन के बारह बज रहे थे। कमरे की दीवाल पर लगे क्लाक ने टन्-टन् करके बारह चोटें कीं। कुमारी चौंक गई और उस ओर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद मानिक बाबू आ गये। उनके पीछे सावित्री भी लम्बा सा घूंघट डाले खड़ी थी। कुमारी ने भी उन्हें देख मुंह ढंक लिया; क्योंकि मानिक बाबू अधेड़ थे। सम्भ्रान्त महिलायें उनसे पर्दा करती थीं। यह उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा थी।

कुमारी ने मानिक बावू का सम्मान किया। उन्हें आदर पूर्वक सोफे पर वैठाया। अनिल ने उन्हें जलपान कराया। वात कहते ही चाय तैयार हो गई। मानिक वावू ने वतलाया कि सावित्री की जमानत बड़ी मुश्किल से हुई।

कुछ देर वाद जब मानिक बावू चले गये तो सावित्री रोकर कुमारी के वक्ष से लग गई। वह अति विनीत स्वर में वोली—"मुझे क्षमा कर दो वहन। मैं वहुत शर्मिन्दा हूं।"

कुमारी उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। वह स्नेह भरे स्वर में उसे समझाती हुई बोली—"सुवह का भूला अगर सांझ तक घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहा जाता। कोई वात नहीं। जो हुआ उसे पीछे छोड़ो और आगे की देखो।"

यह कहने के उपरान्त कुमारी अपने आंचल से सावित्री के आंसू पोंछने लगी।

अनिल वहां से हट गया उसने अपने कमरे के किवाड़े अन्दर से वन्द कर लिए और सावित्री सारे दिन पश्चाताप की आग में जलती रही। उसे रह-रह कर यही लग रहा था कि आज जो कुछ उसके साथ यह अनर्थ हुआ कभी नहीं होता अगर उसमें समाई की शक्ति होती वह इतनी भयभीत थी कि आने के वाद उसने पति की ओर आंख उठाने का भी साहस नहीं किया। वह जव तक सोई नहीं भीतर ही भीतर रोती रही उसके सम्मुख ऐसा लग रहा था मानो कोई जलती हुई मसाल लिए खड़ा हो और कह रहा हो कि यह विनाश की ज्वाला जो लोग दूसरों के लिए आग लगाते हों वे एक दिन स्वयं अपनी ही लगाई हुई आग में जल जाते हैं जो तंग विचारों के होते हैं। उनकी यही गति होती है और इसे ही कहा जाता है सांप-छंछूदर की गति।

एक दो और फिर तीसरा दिन भी बीत गया सावित्री के मन का क्षोभ कम नहीं हुआ। वह निरन्तर अपने प्रति सोचती ही रही कि उसे क्या करना है कौन सा कदम उठाना है। अगर कहीं पैर फिसला तो वह धड़ाम से गिरेगी। गिरने का नाम मौत है और उठने का जिंदगी। साहसकारों के सामने मनुष्य वड़ा है और विवेक मन को संतुलित करने की पूंजी। मैंने सन्तोष क्यों नहीं किया मैं अधिकारों की भूखी क्यों रही। मुझमें स्वार्थ ही प्रदान रहा इसीलिए मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा।

धीरे-धीरे एक सप्ताह वीत गया किन्तु अनिल की परिस्थिति में

तनिक भी अन्तर नहीं आया वह सावित्री से बोलना तो दूर रहा उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता आंखें मूंद लेता अनिल जब सावित्री सामने से गुजरती वह सर्वथा उपेक्षित हो रही थी उसमें और निर्वासिता में कोई भी अन्तर नहीं रह गया वह जब अपनी परिस्थिति पर विचार करती तो पापी की कुमारी से वह लाख कदम पीछे पति की प्रीति उसके लिए दुर्लभ हो रही हैं उसने अधिकारों के निमित अपना प्यार खो दिया अगर मैके जाती है वहां भी उसकी परवाह नहीं होती ससुराल में बच्चा-बच्चा जानता है कि छोटी बहू का स्वभाव अच्छा नहीं है तो फिर गोमती में जाकर डूब जाय या चलती ट्रेन के आगे आ जाय यही एक रास्ता है उसके लिए अन्य कोई मार्ग नहीं।

सावित्री जितना सोचती उतना ही वह उलझती जाती थी उसे किसी का भी मोह नहीं सताता पति का प्यार चाहती थी किसी भी शर्त पर जीवन देकर एक महीना बीत गया अब जाड़ा अच्छा खासा पड़ने लगा था अनिल कुमारी के लिए कशमीरी शाल लाया तो उसने वह सावित्री को उड़ा दिया अनिल ने जब प्रतिवाद किया तो उसने हंस कर टाल दिया कि छोटे के आगे बड़े का श्रंगार शोभा नहीं देता।

सावित्री ने पति की ओर से अपना यह अपमान समझा वह जिस दिन से जमानत पर आयी थी तब से अब तक एक दिन के लिए भी घर से बाहर नहीं निकली उसने सोचा कि मैं जहर की एक शीशी ले आऊं उसे पीकर सो रहूं बस यही मेरी जिंदगी का अन्त है इस जीवन में यह कलंक कालिमा धुलने से रही नया जीवन मुझे नया भाग्य प्रदान कर सकता है।

सावित्री एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं बैठती वह कुछ न कुछ सोचती ही रहती कुमारी उसे जब चिंतित देखती तो अवसर पाकर समझाती वह कहती कि कुछ घटनाएं जीवन में ऐसे होतीं हैं जिन्हें मनुष्य कभी भूल नहीं पाता। भूल जाओ सावित्री तुमने कोई भूल नहीं की तुम अज्ञान की ओर जा रही थी तुम्हें नसीहत मिल गयी।

किन्तु सावित्री को इस सब से संतोष नहीं होता वह मन ही मन ईश्वर से विनय करती कि भगवान उसे धरती से उठा ले उसका मुंह उजला कर दे। अब वह किसी का भी अनिष्ट नहीं चाहेगी बुराई का बदला बुराई है। और नेकी अन्धे को भी नेक राह पर ले जाकर खड़ा कर दे जो जैसा बोता है उसे वैसा ही काटने को मिलता है मैंने सूल बोए हैं और फूल चाहती

हूं किन्तु विधाता की सृष्टि में यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं।

अधिक चिन्ता के कारण सावित्री दुबली हो गयी थी उसका मुख कमल हमेशा मुर्झाया रहता है और लगता कि चिंता के बादल छाए हैं वह थम-थम कर सांस लेती बहुत कम बोलती हमेशा खोई-खोई सी बनी रहती देखने से प्रतीत होता कि वह रुग्ण है इसी लिए उसके मुख की कान्ति विलीन हो गई।

●

२२

एक दिन सावित्री कुमारी के साथ हनुमान जी के मन्दिर अमीनाबाद गई। दूसरे दिन वह उसे अपने साथ गोमती ले गई और तीसरे दिन उसे यह धुन सवार हुई कि आज वह जिन्दा अजायब घर देखने जायगी सावित्री ने सोचा था कि जब वह शेर के कटघरे के सामने जाएगी तो सीकचों से अन्दर घुस जावेगी शेर उसका काम तमाम कर देगा किन्तु वहाँ तक जाने की नौबत ही नहीं आयी दैव योग की बात कुमारी बीमार पड़ गई उसे ज्वर आ गया।

तब सावित्री कुमारी के लिए दवा लेने डिस्पेन्सरी गई उसी बीच वह जहर की शीशी भी खरीद लायी बाजार से उसने आकर कुमारी को फौरन ही एक खुराक दवा पिलायी उसे ध्यान नहीं रहा वह जहर की शीशी उसी मेज पर भूल गयी जिस पर और दवाइयां रक्खी थीं कुमारी की निगाह उस पर पड़ी तब सावित्री चाय बना रही थी उसने जल्दी से जहर पीक दान में डाल दिया शीशी धोकर उसमें पानी भर फिर डाट लगा दी सावित्री को जब थोड़ी देर बाद होश आया तो वह जल्दी से जहर की शीशी उठा ले गई

उसे सन्तोष इस बात का था कि कुमारी वह शीशी देख नहीं पायी ।

रात आधी से अधिक हो रही थी कुमारी को भी नींद आ गयी वह जब सोने लगी तब सावित्री उठी उसने फाउन्टेन पेन ले पत्र लिखना आरम्भ किया कि मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है मैं अपनी खुशी से आत्म हत्या कर रही हूँ पुलिस इसके लिए किसी को भी हैरान न करे मैं जिन्दगी से तंग आ गयी हूँ और मेरी अब दुनिया को जरूरत नहीं है ।

पत्र लिखकर सावित्री ने मेज पर रख पेपर वेट के नीचे दबा दिया फिर वह शीशी खोल गट-गट करके उसमें तरल वस्तु पी गयी उसे वह जहर कड़ुवा नहीं लगा तो सोचने लगी कि इस नए जमाने में जहर भी ऐसा चला जो स्वाद में पानी जैसा होता है इस तरह सोचते विचारते रात थोड़ी ही शेष रह गई और सावित्री को नींद नहीं आयी । प्रातः काल वह सो गयी तो सपने में देखा कि वह मरी नहीं बच गयी है और घर के सब लोग उसे धिक्कार रहे थे अभी वह निद्रा देवी की गोद में ही थी कि अनिल उठा उसने पेपर वेट के नीचे एक कागज दबा देखा उठाकर पढ़ा तो वह सावित्री की चिट्ठी थी उसने वह पत्र ले जाकर कुमारी को दिखलाया तब कुमारी ने उसे सब वास्तविकता बतलाई उसने कहा कि सावित्री ने जहर खा लिया है चलो देखो वह किस हालत में है ।

इतने में ही सावित्री की आंख खुल गई उसने सुना अनिल कुमारी से कह रहा था कि बेशर्मों को मौत भी नहीं आती वह उनसे दुखी है ।

सावित्री ने यह सुना तो समझ गई कि उसकी चिट्ठी पकड़ी गई है । उसके साथ धोखा हुआ दुकानदार ने उसे जहर के बदले पानी दे दिया । वह विश्वास में मारी गयी । वर्ना उसकी यह फजीहत क्यों होती है । उसने चुप चाप सब सुन लिया किसी को भी जवाब नहीं दिया । वह सोचने लगी अपने भाग्य के प्रति कि उसका नसीब कितना खोटा है । जो उसे कदम कदम पर रुलाता है । एक क्षण के लिए भी हंसने का मौका नहीं रहता ।

अब सावित्री के कलेजे में हूक सी उठती थी । वह सोचती कि मनुष्य जब किसी पाप का प्रायश्चित करने चलता है तो उससे एक नहीं अनेक भारी भूलें हो जाती हैं जिनसे वह जीवन पर्यन्त के लिए कायल और शर्मिन्दा हो जाता है । मैंने विष खाकर प्राण देने की सोची थी लेकिन सफल नहीं हुयी । क्या करूं किस्मत में जो बदा होता है वह मिलकर

कहा जाता है कि विधाता के न्याय पर सन्तोष कर लेना मनुष्य का परम धर्म है जो सन्तोष के घूंट नहीं पीते वे जिन्दगी भर दुख की आग में जला करते हैं उनकी जिन्दगी कभी मुस्कराती नहीं वह आंसू बहाती है मेरी तरह हर दम अब क्या करूं कहां जाऊं मेरे लिए कौन सा रास्ता है जिस दिन सावित्री ने जहर खाया उस घटना को आठ दिन हो गए। अब अनिल जब उसे सामने देखता है तो कुमारी से कहता कि प्राण बड़े निर्लज्ज हैं। और वह सहज ही नहीं निकलते हैं। जो आन का पक्का होता है प्राणों की बाजी वही लगा सकता है हर एक नहीं।

सावित्री यह सुनती तो मन मसोस कर रह जाती है कि क्या से क्या कर बैठी। मुझे नहीं मालूम था कि दूकानदार मुझे धोखा देगा वह जहर ही शुद्ध नहीं देगा। आज कल किसी का भी विश्वास नहीं मेरी समझ में हर आदमी बाहर से उजला और अन्दर से काला है। जिसका विश्वास करो वही मिलकर धोखा देता है एक बार आदमी का मोल जब गिर जाता तो फिर वह ऊंचा नहीं उठता उसके साथ बदनामी छाया की भांति पीछे लग जाती है। वही मति मेरी है अब न घर की हूं न घाट की।

सावित्री आजकल बहुत उदास रहती है। एक दिन सवेरे उसकी चारपाई खाली मिली तो कुमारी ने समझा कि वह जल्दी उठ गयी होगी। उसने शौचालय तथा ऊपर की छत देखी सावित्री वहां नहीं थी। बाहर के किवाड़ों की कुंडी खुली थी कुमारी चौंक गयी। उसके मन को संदेह ने घेर लिया अवश्य सावित्री कहीं चली गई उसने इधर उधर तलाश की फिर घबराई और पति से कहा कि मालूम होता है सावित्री कहीं चली गयी।

"चली गयी बड़ा अच्छा हुआ मैं तो भगवान से मनाता हूं कि अब वह लौट कर न आए जान बची लाखों पाए एक बला से पीछा छूटा बहुत अच्छा हुआ कुमारी बिना बयारी के ही जूता टूट गया।"

पति के मुंह से यह सुन कुमारी कुछ रुष्ट हो गई। वह उसे जवाब देती हुई बोली—"तुम्हीं उसको व्याह कर लाए उसकी जिन्दगी के तुम्हीं जिम्मेदार हो अगर सावित्री को कुछ हो गया तो दुनिया तुम्हे थूकेगी ऐसा मत कहो उसकी तलाश करो आदमी को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए यही मानव धर्म है।"

अनिल को कुमारी का यह गुस्सा अच्छा लगा वह कुछ बोला नहीं

मुस्कराता रहा।

और कुमारी वह गहरे अन्तरद्वन्द्व में डूब गई कि वे (अनिल को) सावित्री की तलाश करने नहीं जाएंगे मैं ही निकलूं शहर का कोना-कोना छानूं शायद वह मिल जाय वैसे तो मुझे आशा नहीं है कि वह लखनऊ में हैं और मिल कर रहेगी।

कुमारी दोपहर को घर में रही। उसके बाद वह अशोक को लेकर बाहर निकली सबसे पहले उसने गोमती के सब घाट देखे फिर पुरानी इमारतों के ओर गई। वह सांझ तक भटकी। स्टेशन पर भी गई। लेकिन सावित्री का पता नहीं चला तब निराश कुमारी घर लौट आयी। पति के आने से पहले उसने उसके सम्मुख सावित्री का जिक्र तक नहीं किया और न यही बतलाया कि आज वह उसकी तलाश में घर से बाहर निकली।

अनिल को अभी पूरी यकीन नहीं था कि सावित्री ने आत्महत्या कर ली है। वह जानता था कि सावित्री मौत से डरती है इसीलिए योजना पर योजना बनाती है वह कभी सफल नहीं हो सकती। उसका चित्त स्थिर नहीं है।

कुमारी को सारी रात नींद नहीं आयी। वह सोचती रही कि आखिर सावित्री कहां गई होगी। उसने क्या किया होगा अगर वह शहर से बाहर निकल गई तो फिर मिलना कठिन है कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने आत्महत्या कर ली हो क्या सुख मिला उसे जिन्दगी का जब से मैं आ गई हूँ वह निरन्तर ईर्ष्या और द्वेष की आग में जल रही है। काश मेरे द्वारा उसका अहित नहीं होता तो कितना अच्छा होता। अब सोचती हूँ तो पछताती हूँ कि मुझे अपने मौके से ससुराल नहीं आना चाहिए था। मैंने बहुत बड़ी भूल की जो राम दादा की बात मान ली। मेरे ही कारण सावित्री का जीवन संकट मय हो गया मैं शहर न आती तो वह सुख चैन से रहती मैं ही उसके सुख की बाधा हूँ और मार्ग का कांटा मैं उसकी सौत हूँ और सौत दुनिया में बदनाम होती है लोग कहते हैं कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

कुमारी इसी तरह दिन रात सोचती रहती। तीन दिन बीत गए। वह पता लगाकर हार गई; लेकिन सावित्री का कुछ भी सूराग नहीं मिला।

२३

कुमारी की चिनता का ओर छोर नहीं था। सावित्री को गए आज चौथा दिन था। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह जब विचार-मग्न होती तो उसे लगता कि कोई उसके कानों में कह रहा है कि सावित्री अब लौटकर नहीं आयेगी। वह ज़िन्दगी में सबसे बड़ी बाजी हार गई है, इसीलिए अब किसी को मुंह नहीं दिखलायेगी। कुमारी इससे चौंक जाती और सोचने लगती कि मैं नहीं जानती थी कि यह अनर्थ हो जायगा, वरना कभी लखनऊ नहीं आती। अपने पीहर में ही बनी रहती। काश ! एक बार सावित्री मिल जाय तो मैं उसके सामने हंसी-खुशी यहां से चली जाती।

आज भी जब पति दूकान चला गया तो कुमारी सावित्री की खोज में निकली। अशोक उसके साथ था। वह इधर उधर भटकने लगी। वह नगर की बस्ती से बाहर गई। वहां लोगों से पूछा और पता किया, फिर मल्लाहों से पूछा। वह हर घाट पर गयी। बनारसीबाग के भी उसने कई चक्कर काटे। कहीं नहीं मिली सावित्री तो कुमारी निराश हो गई। रात होते-होते वह घर लौट आयी।

इतना कभी कुमारी पैदल नहीं चली थी, आज वह बहुत थक गई थी, शरीर बोझिल हो रहा था, उसने खाना नहीं बनाया। अनिल के आने के थोड़ी देर पहले खिचड़ी डाल दी थी।

इसके बाद जब कुमारी खाने बैठी तो उससे कौर नहीं चला। अनिल ने देखा कि उसकी आंखों से टपटप आंसू गिर रहे हैं। उसने उसकी इस परिस्थिति का अध्ययन किया। कुछ देर बाद उसने उसे टोका। वह बोला—"क्या बात है कुमारी ? तुम रो क्यों रही हो।"

कुमारी अब भी रो रही थी। आंचल से आंसू पोंछती हुई वह धीरे से बोली—"रोती हूं अपनी किस्मत को। सावित्री पता नहीं कहां होगी। उसका तुमने पता भी नहीं लगाया। तुम्हें तो उसकी परवाह ही नहीं है। तुम……।"

कुमारी की यह बात सुन अनिल ने तनिक मुंह बनाया, फिर एक लम्बी सांस लेकर कहने लगा—"सावित्री को अब उसी के हाल पर छोड़ दो

कुमारी। मैं उससे तंग आ चुका हूं। वह शान्ति से बैठने नहीं देगी। उसके विचार अच्छे नहीं हैं।"

"तुम्हारा यह सोचना गलत है। सावित्री में सब बुराइयां ही बुराइयां नहीं हैं, अच्छाइयाँ भी हैं। जब किसी के भाव अच्छे नहीं होते, तो उसमें गुणों की अपेक्षा दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। सावित्री की तलाश करो यह सबसे पहले जरूरी है।"

कुमारी यह कह कर पति की ओर देखने लगी। अनिल मौन रहा। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

कुमारी देर तक पति को समझाती रही। उसने कहा कि दोष सावित्री का ही नहीं, हम लोगों का भी है। वह पूछते-पूछते नहीं आई, व्याह कर लायी गयी है। सबसे पहली भूल मेरी है जो तुम्हारी बात मैंने नहीं मानी, तुम्हारे साथ लखनऊ नहीं आई, वरना सावित्री से व्याह होता ही क्यों। इसके बाद दुनियां तुमको कहेगी कि तुमने दूसरा व्याह क्यों किया। अगर उसका हाथ पकड़ा है, तो साथ न छोड़ो। सावित्री अपनी है। उसके साथ उपेक्षिता का व्यवहार न करो।

अनिल चुपचाप सुनता रहा। कुमारी को उसका मौन खला। वह तनिक रुष्ट होकर बोली—"शायद तुम्हारी समझ में कुछ आया नहीं। अब भी होश में आओ आखें खोलो। सावित्री तुम्हारी है। वह........।"

"तो उसके लिए क्या करूं कुमारी ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता है। मैं हैरान हूं। मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही।" यह कह कर अनिल कुमारी के पास ही बैठ गया।

कुमारी प्रसन्न हो गई और पति से कहने लगी कि जिस तरह से भी हो, सावित्री की तलाश करो। उसका पता लगना जरूरी है। जानते हो अगर वह न मिली यहां ही नहीं, गांव में भी बड़ी बदनामी होगी। किसी के भी मुंह में समाओगे नहीं।

अनिल को लग रहा था कि कुमारी मानवी नहीं, देवी है। वह जो कुछ कह रही है, अक्षरशः सत्य है। उसके कान खड़े हो गए। वह अपनी स्थिति पर विचार करने लगा कि लोकलाज के लिए सावित्री का पता लगाना आवश्यक है, वरना लोग क्या कहेंगे।

और कुमारी सोचती कि अब सावित्री का पता वे (अनिल) भी

करेंगे। नगर के इतने बड़े जन-समुद्र में मुझे तो वह कहीं नहीं दिखाई दी। क्या पता कहां होगी। ईश्वर उसे सद्बुद्धि दे, वह सीधी घर चली आये। लेकिन यह सोचते ही कुमारी कुछ चौंक सी गई। उसका मन आशंका से भर गया। वह सोचने लगी कि सावित्री कहीं जिन्दगी से खिलवाड़ तो नहीं कर बैठी। वह बड़ी नादान है। उसमें बुद्धि बिल्कुल नहीं है।

वह रात कुमारी को सोचते-बिचारते ही बीत गई। दुनियां भर के विचार उसके मस्तिष्क में आते-जाते रहे। सवेरे जब वह उठी तो उसका चित्त भारी था। किसी भी काम में मन नहीं लग रहा था। उसकी आंखों के आगे सावित्री का चित्र घूम रहा था। उसके मुंह से एक निःश्वास निकल पड़ी। वह खुले आकाश की ओर देखने लगी। उसका मन जैसे विक्षिप्त सा होने लगा।

●

२४

सावित्री रात को घर से निकली तो वह सीधी एक सड़क पर चलती गई। दिन निकल आया, वह एक गाँव में पहुँची। कुछ देर वहाँ एक पेड़ के नीचे बैठकर आराम किया। तदुपरान्त उसने अपनी अनिश्चित यात्रा आरम्भ कर दी। वह चाहती थी कि नगर लखनऊ से वह काफी दूर निकल जाय। उसके बाद फिर वह तय करेगी कि उसे क्या करना है।

मंजिल तय करते-करते रात हो गई। सावित्री एक खेत में छिपकर पड़ रही ताकि उस पर किसी की निगाह न पड़े। दिन भर चली थी। खूब थक गई थी। इसीलिये सोई तो फिर सवेरे ही उसकी आँख खुली।

सावित्री को प्यास लगी थी। उसने एक तालाब पर जाकर पानी पिया। पेट खाली था। पानी जाकर आंतों में लगा। वह पेट पकड़कर बैठ गई। वह सोचने लगी कि अब मुझे क्या करना चाहिये। अगर मैं जीवित रहती हूँ तो किसके लिये? और यदि आत्महत्या करती हूँ तो किस तरह। मुझे जिन्दगी भी अपनी नहीं पराई मालूम होती है। दुनिया में कोई किसी का नहीं सब मतलब के साथी हैं। कहाँ जा रही हूँ, कुछ भी मालूम नहीं।

सावित्री देर तक सोचती रही; लेकिन वह किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाई। तीन दिन तक भूखी प्यासी वह इधर उधर भटकती रही। रास्ते का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था। इसीलिये घूमते-घूमते पुनः लखनऊ आ गई।

सावित्री जिस समय लखनऊ पहुँची तो रात हो आई थी। वह गोमती के किनारे जाकर एक घाट की सीढ़ियों पर बैठ गई। यह रात चांदनी की कठोर शीत से भरी। जाड़े से सावित्री का गात काँप रहा था। वह सोच रही थी कि अभी गोमती में जल-समाधि ले लूंगी। बस सारे झंझट अपने आप ही खत्म हो जायेंगे। मेरे जीवन का अस्तित्व उसी दिन समाप्त हो गया था, जिस दिन मेरा व्याह हुआ था।

अष्टमी का अर्द्धवृत्ताकार चाँद नीले आसमान में तैर रहा था। सावित्री कभी उसकी ओर देखती और कभी कल-कल, छर-छर- करती हुई गोमती की जलराशि को देखने लगती। वह इस समय अर्द्ध विक्षिप्त सी हो रही थी। समय लगभग बारह बजे का था। नदी के किनारे सर्वत्र सन्नाटा व्याप्त हो रहा। बैठे-बैठे सावित्री कभी-कभी चौंक उठती और दृष्टि उठाकर सामने तथा पीछे की ओर देखने लगती। दूर कहीं कुत्ते भौंक रहे थे। सावित्री का कलेजा धकधक कर रहा था। उसे लग रहा था कि पीछे से कोई आ रहा है और आते ही उसे पकड़ लेगा।

इस तरह धीरे-धीरे एक घन्टा बीत गया। अब सावित्री बैठी न रह सकी। वह उठकर खड़ी हुई। उसने एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। फिर घुटनों तक जल में उतरी। ममता ने उसे झकझोरा। वह ठिठक गई। उसे अशोक की याद आई। कलेजे में टूक सी उठी और उसकी आंखें जलमग्न हो गईं।

कई क्षण बीत गये और सावित्री अपने स्थान से टस से

हुई। फिर उसमें साहस आया और उसने मन ही मन ईश्वर का स्मरण कर एक पाँव आगे बढ़ा दिया। तत्पश्चात दूसरा भी आगे बढ़ा। अब वह कटि पर्यन्त जल में पहुँच गई थी।

जब जल उसके वक्ष:स्थल को छूने लगा तो एक बार वह नीचे से लेकर ऊपर तक काँप गई। उसके दांत परस्पर टकराकर बजने लगे। फिर भी उसने हिम्मत बाँधी थोड़ा और आगे बढ़ी। इसके बाद जैसे ही उसने डुबकी लगाई कि किनारे पर खड़ा एक व्यक्ति पानी में कूद पड़ा। वह हाथ-पाँव मारकर डूबने वाली को थोड़ी देर में ही बाहर निकाल लाया।

वह आदमी सावित्री को कन्धे पर लादकर एक पेड़ के नीचे ले गया। उसने उसे पट लेटा दिया ताकि उसके पेट का पानी निकल जाय। इस कार्य में उसको लगभग एक घंटा लग गया। देर बाद सावित्री होश में आई तो चाँदनी में उसने पहचाना कि यह वही युवती है जो कुछ दिन पहले उसे गोमती के तट पर गठरी में बंधी मिली थी। उसने कहा—"तुमने पहचाना मुझे। मैं वही डाकू सरदार संगीत हूँ। तुम······।"

सावित्री कुछ-कुछ स्वस्थ हो आई थी। वह विघ्न डालकर बोली—"चले जाओ यहां से। तुमने मुझे बचा क्यों लिया। डूब जाने देते। मेरी जिन्दगी का यहीं अन्त था। आपके पीछे उस दिन पुलिस ने मुझे बहुत हैरान किया। उसका कहना था। कि तुम डाकुओं के दल की हो। किसी तरह जमानत हो गई। कुछ दिन घर में रही; लेकिन अब मैं जीना नहीं चाहती हूँ। जाओ तुम यहाँ से चले जाओ। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।"

संगीत मुस्कराया। वह धीरे से बोला—"सचमुच तुम बहुत दुखी हो। यह मैंने आज जाना। मैं जानता था कि पुलिस तुमको हैरान करेगी। खैर कोई बात नहीं। क्या मैं जान सकता हूँ कि आज तुमने आत्म हत्या के लिये दृढ़ निश्चय क्यों कर लिया? मुझे बहुत दुख है कि मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सका; लेकिन अब वादा करता हूँ कि तुम्हें तुम्हारे अधिकार दिलवाकर रहूँगा। जो जिन्दगी तुम्हें आज दूभर लग रही है वही मुस्कराकर रहेगी। बताओ······।"

सरदार ने ओढ़ने के लिये सावित्री को अपना कम्बल दे दिया था; फिर भी वह ठंड से थर-थर कांप रही थी। उसके कपड़े गीले थे। वह रोने लगी और रो-रोकर संगीत को अपना सारा हाल सुनाने लगी।

उस दिन सरदार अकेला ही था। वह रात को किसी जानकारी के लिगे निकला था, इसीलिये किसी को भी साथ नहीं लाया। उसने सावित्री को ढाढ़स बंधाया और समझाकर कहा कि वह हिम्मत से काम ले। उसका जीवन एक दिन सार्थक होगा।

अभी रात का एक पहर शेष था। संगीत, अपने साथ सावित्री को वहाँ से दूर ले गया। लकड़ियां इकट्ठी कर उसने आग बनाई। दोनों ढाक के झुरमुट में बैठे थे। सवेरे तक वे वहीं बैठे रहे और बातें करते रहे।

संगीत ने सावित्री को इस बात के लिए पूर्णतया: प्रस्तुत कर लिया कि वह उसके साथ अनिल के घर जायगी ऐसा करने में उसका हित है और उसका भविष्य बनता है।

सावित्री ने भी अच्छी तरह सोच विचार लिया था कि संगीत उसका हितैषी है उसके द्वारा उसका अहित कभी नहीं हो सकता है।

गजरदम जब चिड़ियों ने जबान खोली और झोपड़े से निकल कर किसान चला तभी प्राची के गगन से बाल रवि उदय हुआ वह रक्ताभ था धीरे-धीरे जलता हुआ और इसकी सुनहली किरणे धरती के साथ आंख मिचौली खेलने लगीं पैदल ही संगीत और सावित्री केसरबाग तक आ गए। आगे की मंजिल आसान थी अमीनाबाद आता था वहां से गणेशगंज था ही कितनी दूर दोनों पलक मारते वे ही अनिल के सामने जाकर खड़े हो गए डाकू सरदार संगीत ने अनिल को नमस्कार किया वह बोला—"सावित्री आपकी पत्नी है आप इसे स्वीकार कीजिए मैं डाकू सरदार हूं मेरा काम जन सेवा है तुम्हें मेरी बात माननी होगी मैं जानता हूं कि सावित्री में कोई दोष नहीं है।"

कुमारी रसोई में थी वह भी वहां आ गई वह विस्मय विस्फारित नेत्रों से डाकू की ओर देखती हुई मन्द स्वर में बोली—"आप मेरे भाई हैं सावित्री हमसे दूर नहीं वह हमारी आंख का काजल है और कलेजे का टुकड़ा आप का बहुत-बहुत धन्यवाद जो आप उसे मौत के मुंह से निकाल लाए हम लोग तो निराश हो चुके थे उसका कहीं भी पता नहीं लग रहा था।" कुमारी ने संगीत को जलपान कराया उसकी आवभगत की फिर उसके सामने ही सावित्री को वक्ष से लगाकर बोली—"संगीत आपका नाम कितना प्रिय है आप हमारे भाई हैं हम दोनों आपकी धर्म बहिन आप यह डाकुओं की वृत्ति क्यों अपनाए हैं क्या जीवनयापन करने का अन्य कोई मार्ग नहीं।"

कुमारी के इस प्रश्न पर संगीत को बोलना पड़ा उसने कहा—"मैं डाकू अपनी मर्जी से नहीं बना समाज ने मुझे इसके लिए मजबूर कर दिया फिर कभी आऊंगा मेरी दास्तान बहुत लम्बी है विस्तार पूर्वक सुनाऊंगा। अभी मुझे विदा दो। बहिन सावित्री का ध्यान रक्खो उसके विचारों में परिवर्तन करो यही मेरी आप से प्रार्थना है।"

इसके बाद संगीत ने अनिल को बहुत समझाया और चलते-चलते कहता गया—"सावित्री मेरी धर्म बहन है अनिल उसका ध्यान रखना वह नादान है उसकी गालियां को माफ करना उसे अंगीकार करो अनिल वह तुम्हारी अर्द्धांगिनी है बस मैं चलता हूं कभी-कभी आऊंगा वह भी अवसर निकालकर आप लोग नहीं जानते जो परमार्थ की ओर अग्रसर होते हैं दुनियां उसकी कटु आलोचना करती है और भरसक निंदा विष के वृक्ष में अमृत के फल लगते हैं और पारखी उन्हें चखते हैं। शेष दुनिया तो यह एक कोरा ढकोसला है जिन्दगी क्या है आदमी की एक मंजिल स्वार्थ एक अनवुझी प्यास तृष्णा उसी का दूसरा नाम है मैं सब जंजालों से दूर हूं अनिल बाबू बस अब मुझे आज्ञा दीजिए।"—इसके बाद संगीत ने किसी के भी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की वह चुपचाप वहां से चल दिया तभी कुमारी के मुंह से निकल गया वह वोली—"हर बुराई में अच्छाई छिपी रहती है लेकिन दुनिया देख नहीं पाती है यह उसकी भूल है। संगीत दुनिया के लिए कलंक लेकिन मेरे लिए सोना मजबूरी जब आती है तो आदमी अपना पराया भूल जाता है।"

सावित्री गुम सुम बैठी थी उसके होंठ जैसे किसी ने सिल दिए थे अशोक उससे लिपट रहा था वह बार-बार पूछ रहा था कि तुम कहां गई थी ? सावित्री निरुत्तर थी और अनिल सोच रहा था कि बला जाकर फिर लौट आयी यह अच्छा नहीं हुआ। मालूम होता है कि डाकू सरदार को सावित्री ने अपना सब हाल बतलाया है वर्ना वह उसको लेकर कभी नहीं आता। अब क्या करूं सावित्री घर में रहेगी तो रोज कल्ह मचेगी उसमें समाई तनिक भी नहीं मैं तंग आ गया हूं इससे ईश्वर या तो मुझे मौत दे दे या उसे। अनिल सावित्री के प्रति सोच-सोच कर हैरान हो रहा था उसकी प्रज्ञा काम नहीं कर रही थी विवेक भी साथ नहीं दे रहा था वह अपने में पूर्णतया हैरान था उसे लगता था कि यह उसकी परीक्षा का समय है वह हारेगा नहीं जीत कर ही रहेगा।

२५

सांझ का सूरज अस्ताचल की ओर जा रहा था दिशाएं गीत गा रही थीं पक्षियों का कलरव मात्र मन को मोह रहा था डालीगंज की वस्ती में देहात जैसी रौनक थी ओझे के घर कुछ स्त्रियां आयीं थी अपने बच्चों को लेकर झाड़ फूंक करवाने वह उनसे पैसे ऐंठ रहा था तभी एक अजनबी उसके सामने आकर खड़ा हो गया और तेज गले से वोला—"तुम्ही हो वह ओझा जो भले घरों की औरतों को भड़काते हो तुमने एक औरत के जेवर छीन लिए उसे गोमती के किनारे पटक आए लाओ उसके जेवर मुझे दो वर्ना पिस्तौल की गोली तुम्हारे सीने से पार होती है । ओझा डर गया उसके यजमान भाग गए पहले वह अनभिज्ञ वन गया वाद में उसने सावित्री की चीजें लाकर डाकू सरदार के हाथों पर रख दी । इस पर भी नहीं छोड़ा सरदार ने उसे वह उसे अपने साथ गणेशगंज लाया जब अनिल के आगे आकर उसने माफी मांगी तब जाकर उसकी जान बची ।

ओझा चला गया संगीत कुमारी के साथ बातों में लग गया ठीक तभी सीटियां सुनाई पड़ीं और धड़धड़ाती हुई पुलिस अनिल के घर में घुस आई।

"कहां है डाकू सरदार ?" पुलिस इंसपेक्टर ने अनिल को डांटा कुमारी दरोगा का मुंह देखने लगी तब तक सावित्री ने संगीत को छुपा दिया लकड़ियों के ढेर में पुलिस ने घर का कोना-कोना छान डाला लेकिन डाकू का पता कहीं नहीं चला । तब निराश होकर पुलिस चल दी और थानेदार ने कुमारी से कहा—"माफ कीजिए, मुझे गलतफहमी हुई एक डाकू सरदार संगीत है मैं समझा कि वह आप के घर आया था ।"

दारोगा चला गया तब संगीत अनिल और कुमारी की ओर उन्मुख होकर बोला—"आप मेरी धर्म बहन है। आप ने मेरी रक्षा की यह मैं जीवन भर नहीं भूल सकता ।"

कुमारी ने संगीत को भइया कह कर संवोधन किया वह फिर स्नेह भरे स्वर में वोली—"भइया संगीत अगर तुम न होते तो जैसा कि तुम वतला रहे हो कि सावित्री डूब गई होती हमें इसका पता निशान भी नहीं लगता

वहुत-वहुत धन्यवाद युग-युग जियो भाई कोई न कोई सहाय अवश्य हो जाता है। यह दुनिया का दस्तूर है कि आदमी का काम नहीं रुकता।

संगीत देर तक वहां रुका उसने सावित्री का आद्योपान्त सब हाल बतलाया कुमारी एकटक सुनती रही अनिल ने भी सब पर ध्यान दिया और सावित्री उसने मानो आज मौन व्रत ले रखा था जब तक संगीत घर में रहा और वह कुमारी से बातों में व्यस्त रहा तब तक सावित्री लगी रही उधेड़-बुन में उसे भविष्य में क्या करना है। वह सोच रही थी कि संगीत के आने से उसका मार्ग पूर्णतया स्पष्ट हो गया है, अब उस पर संदेह नहीं किया जा सकता कि वह डाकुओं के गिरोह की है उसकी जीत है कि वह डूबने जा रही थी और डाकू सरदार बचा कर उसको लाया।

सावित्री सोचने लगी कि अव वह किसी के आसरे पर भार बन कर नहीं एहसान बनकर रहेगी उसने प्राणों की बाजी लगा दी इसका बदला उसे अवश्य मिलेगा।

संगीत के जाने के बाद कुमारी ने सावित्री की परिस्थिति का अध्ययन किया उसने पाया कि सावित्री परिवर्तन में नहीं स्वाभिमान के रंग में रंग रही है उसने उसे अपनी सहज बुद्धि से समझाया और कहा। "सावित्री सच्चाई कभी छिप नहीं सकती असलीयत कभी झूंठी नहीं हो सकती तुम्हारे कार्यकलापों ने तुम्हे बहुत ऊंचा उठा दिया मुझे तुमसे यही आशा थी मैं तुम्हारी बलाएं लेती हूं।"

और यह कहने के साथ ही कुमारी ने सावित्री का मुंह चूम लिया।

अभी सब में वार्तालाप ही चल रहा था कि संगीत वापस लौट आया। उसने कुमारी से कहा, "पुलिस मेरा पीछा कर रही है मैं अभी नहीं जाऊंगा।"

तब सावित्री ने संगीत के सिर पर हाथ फेरा और स्नेह भरे स्वर में बोली, "यह तुम्हारा घर है भय्या जब तक जी चाहे रहो।"

और कुमारी ने भी सावित्री की बात का समर्थन किया वह बोली, "संगीत भय्या, बहिन और भाई का रिश्ता अटूट है दुनिया इसके आगे झुकती है पुलिस से मत घबड़ाओ तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होता।"

संगीत कुमारी और सावित्री के साथ बातों में व्यस्त रहा अनिल ने उससे विशेष बातें नहीं की वह उठ कर चल दिया तो कुमारी ने आगे

बढ़ उसकी राह रोक ली वह आग्रह पूर्वक बोली—"मैं ऐसे नहीं जाने दूंगी भय्या भोजन करके जाना। वहिन के घर से भाई भूखा चला जाय भला यह सम्भव कैसे हो सकता है।"

विवश संगीत को अनिल के घर में रुकना पड़ा कुमारी ने उसे चिर परिचित बना लिया था और सावित्री रही थी गर्व से फूल की उसे संगीत जैसा धर्म भाई मिला और संगीत वह अपने में स्वयं प्रसन्न था कि उसके द्वारा किसी का हित हुआ सावित्री की जान बची और अनिल की दुनिया बसी बिगड़ा कुछ भी नहीं। गिरती दीवार सध गई बिगड़ी नारी बदल गई क्या यह पर्याप्त नहीं।

सवेरे से दोपहर हो गयी। संगीत ने वहीं भोजन किया कुमारी ने फिर भी उसे जाने नहीं दिया वह स्नेह भरे स्वर में बोली—"बहन के घर जब भाई जाता है तो कई दिन तक मेहमान रहता है। तुम आज नहीं जा सकते संगीत बाबू आज के दिन मेरे मेहमान रहो तुम्हें कल विदा करूंगी।"

इस पर संगीत मुस्कराया और उसने धीरे से कुमारी को समझाया कि अगर आज वह नहीं जाता है तो उसके दल के लोग चिंतित होंगे। उसका जाना आवश्यक है उसका काम समाज सेवा है डाकू वह कहलाता है केवल पुलिस की नज़रों में या फिर उसकी कोठी में जो काला धन कमाने के लिए लिए अपना धर्म ईमान तक बेच लेते हैं।

तीसरे पहर कुमारी ने संगीत को विदा किया तो उसकी आंखों में आंसू आ गए वह रोकर उससे जाते-जाते बोली—"बहन की सुधि जल्दी ही लेना भइया मेरे कोई भाई नहीं था भगवान ने तुम्हें भेज दिया।"

अनिल कुमारी और संगीत का यह व्यापार देख दंग रह गया। उसने मुंह से कुछ भी नहीं कहा देखता भर ही रहा। उसे लग रहा था कि बदनाम आदमी उतना बुरा नहीं होता है जितना कि बद। कांटे उस फूल से अच्छे हैं जो सड़ जाता हैं जिसमें बदबू आती है। जिन्दगी इस मौत से अच्छी है जो आत्म हत्या के रूप में होती है।

देर तक सोचती रही कुमारी उसे रह-रह कर संगीत की याद आती थी और अन्तःप्रेरणा उसके मन में यह बात लग रही थी कि नाता रिश्ता कुछ नहीं दुनिया में सब कोई एक है। सगे सम्बन्धी कभी काम नहीं आते। गैर ही अपना बनता है चाहे जब तौल लो। नाते रिश्ते और

वाले इन सब की एक नुमायश है जो काम काज के समय या दु:ख-सु:ख में लगायी जाती है। मेरा तो अनुमान यह है कि जिसके जितने अधिक रिश्तेदार हैं वह उतना ही दु:खी है। कुमारी सावित्री की बलाएं ले रही थी वह उसे समझाती रही और रात धीरे-धीरे अपनी जवानी की ओर अग्रसर हो रही थी।

२६

धीरे-धीरे एक सप्ताह बीत गया। सावित्री सरलता की प्रतीक बन गई थी। अब उसके चेहरे पर क्रोध के भाव कभी नहीं दिखाई देते। वह प्रतिमा सी लगती। अनिल का भी मन अब उसकी ओर से कुछ-कुछ साफ हो गया था। वह उसकी उपेक्षा नहीं करता। कुमारी के लिए यह हर्ष का विषय था। वह मन ही मन ईश्वर से विनय करती कि भगवान सावित्री को सद्बुद्धि दे, अभी उसमें बचपना बहुत है।

एक रात को जब कुमारी बाहर चौखट पर खड़ी अशोक को बुला रही थी। तभी उसकी दृष्टि सामने आ रहे संगीत पर पड़ी। वह आंखों पर काला चश्मा चढ़ाये था। उसने श्वेत मरसराइज्ड की धोती पहन रखी थी और वैसा ही ऊनी कत्थइ रंग का कुरता, जिस पर काली सदरी, उसके बदन पर फूटी पड़ रही थी। वह जब कुमारी के निकट आया तो आते ही फौरन उसके चरण स्पर्श माथे से लगा लिये। कुमारी ने उसके सिर पर हाथ रख दिया और उसे स्नेह-पूर्वक अन्दर लिवा लाई।

सावित्री चौके में थी। कुमारी ने उसे आवाज दी। उसने पुकारा "सावित्री देखो कौन आया है।"

यह सुनकर सावित्री उत्सुक होकर बाहर झांकने लगी। जब उसने संगीत को देखा तो मुस्करा दी।

फौरन ही संगीत के लिए चाय बनी। खाना बन ही रहा था। इतने में अनिल भी आ गया। सावित्री ने आलू भरकर कचौड़ियां बनायीं, गोभी और आलू की सब्जी थी। कुमारी हंस-हंसकर संगीत तथा अनिल को परांसने लगी। अशोक भी दोनों के साथ बैठा। सबमें वार्तालाप चलने लगा। उसी बातचीत के सिलसिले में कुमारी ने संगीत को टोक दिया। वह बोली—"तुमने यह रास्ता क्यों अपनाया, संगीत भइया? क्या मैं जान सकती हूं?"

"क्यों नहीं। क्यों नहीं। मैं तो स्वयं ही बतलाने वाला था।" कहकर संगीत ने एक घूंट पानी पिया, फिर धीरे-धीरे कहने लगा—"मैं जिला लखनऊ का ही रहने वाला हूं। परिस्थितिवश मुझे डाकू बनना पड़ा। यह एक बहुत लम्बी कहानी है। भोजन कर लूं, फिर फुरसत में बैठकर सुनाऊंगा।"

जिज्ञासा अनिल में भी जाग उठी। सावित्री भी उत्सुक हो संगीत की ओर देखने लगी। भोजनोपरान्त संगीत सोफे पर बैठ गया। कुमारी के पुनः टोकने पर वह कहने लगा—"मैं एक किसान का बेटा था। मेरे बाप के पास केवल थोड़ी सी खेती थी। परिवार में, मैं था, माँ-बाप और दो छोटी बहनें। खर्च की बड़ी तंगी थी। पिता जी पर हमेशा कर्जा ही बना रहता था। एक बहन का ब्याह किया, उसमें उन्होंने वह जमीन भी बेच दी। इसके बाद वे लगान पर जमीदारों के खेत जोतने लगे। अब घर की हालत और भी अधिक बिगड़ गई। गृहस्थी पिताजी के लिए जी का जंजाल बन गई। वे बुरी तरह परेशान हो गए। कर्ज के भार से वे दबे जा रहे थे; क्योंकि पुराना अदा नहीं हो पाता और नया सिर पर चढ़ जाता। फिर भी वे किसी तरह मेरी पढ़ाई का खर्च करते रहे। मैं हाई स्कूल कर चुका। तब एक बहन का ब्याह हुआ था, और जिस वर्ष मैं थर्ड इयर का छात्र था, पिताजी ने दूसरी बहन का भी ब्याह ठान दिया। रुपये का कुछ भी प्रबन्ध न था। महाजन उनसे सीधे-मुंह बात नहीं करते। आखिर तंग आकर उन्होंने मकान भी गिरवी रख दिया और लड़की को घर से निकाल बाहर किया।"

कमरे में हीटर जल रहा था। सावित्री शाल ओढ़े बैठी थी। कुमारी हाथ-पैरों को कम्बल से ढके थी। अशोक ऊंघ रहा था। उसे कुमारी ने बिस्तर पर लिटा दिया था। अनिल दत्तचित्त हो संगीत की कहानी सुन

रहा था। वह आगे कहता रहा—"रुपया अदा नहीं हो पाया, एक साल की शर्त थी, उसी शर्त के मुताबिक महाजन ने मकान ले लिया और हम सब लोग बेघर हो गये। मैं फोर्थ इयर में आया था, और चाहता था कि इस साल परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो जाऊं, फिर कोई काम करूं। पिता जी गांव में ही झोपड़ी डाल कर रहने लगे। उनके साथ मां थी। महाजन ने तब भी उनका पीछा नहीं छोड़ा, आये दिन तंग करता था। एक दिन मैंने सुना कि मेरे घर में कुर्की हो गई है। इसके अलावा भी पिता जी पर कर्ज है। मैं सीधा गांव गया। मालूम हुआ कि पिता जी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है। उनका अन्त्येष्टि कर मैं मां को लेकर यहां चला आया। वे अधिक दिन जीवित न रह सकीं। एक महीना भी नहीं बीता, उनका प्राणान्त हो गया। मैं ट्यूशन करके किसी तरह अपनी पढ़ाई चला रहा था। महाजन मेरे पास आया, उसने मुझे भी तंग करना शुरू किया। बातचीत बढ़ गई, मैंने उस पर हाथ छोड़दिया। नतीजा यह हुआ कि उसने मुझपर इस्तगासा दायर कर दिया। मुझे आठ महीने की सजा हो गयी। मेरी पढ़ाई चौपट हो गई, साल बरबाद हो गया। जब मैं जेल से छूटकर आया तो सीधा गांव उसी महाजन के पहुंचा। मैंने उससे फटकार कर कहा कि—तू ही मेरे विनाश का कारण है। तू ने ही मेरा सर्वनाश किया है। तेरे ही पीछे खेत बिके, मकान भी तूने ले लिया। मेरे बाप की मौत का जिम्मेदार तू ही है। अब भी तेरी तृष्णा शान्त नहीं हुई। तू ने मुझे जेल करवा दी। मेरा साल चौपट कर दिया। मैंने तय कर लिया है कि जब तक तुझे फकीर न बना लूंगा, तब तक चैन न लूंगा। होशियार हो जा महाजन ! मैं तेरा दुश्मन हूं। उसके आदमी मुझे पकड़ने के लिए उठे, तो मैंने उसके मुंह पर एक लात मारी, और वहां से चलता बना। मेरे नाम बिना जमानती वारन्ट निकला। बस तब से लेकर अब तक मैं पुलिस की नजरों से फरार हूं।"

संगीत ने यह कहकर एक लम्बी साँस ली। सब लोग चित्र लिखे से बैठे थे। अनिल आगे की कथा जानने के लिए जिज्ञासु हो उठा। उसने फौरन ही उसे टोक दिया—"फिर उसके बाद क्या हुआ संगीत ? तुम डाकू कैसे बने ?" संगीत ने सामने लगी टिक-टिक कर रही क्लाक पर दृष्टि डाली। ठीक दस बज रहे थे। उसने कहा—"दो घन्टे बाद, बारह बजे मैं यहां से चला जाऊंगा। हाँ तो सुनिये, मैं रात के अंधेरे में गाँव आया। अपने उन साथियों

से मिला जो उस महाजन के अत्याचार से बुरी तरह पीड़ित थे। मैंने उनको संगठित किया। फिर घुस गया मैं महाजन के घर में। उसकी बन्दूकें छीन लीं, उसके घर को लूट लिया। उसमें हम लोगों को बहुत सा रुपया और जेवर मिला। अब मैं गाँव में नहीं रह सकता था, क्योंकि डाकू घोषित हो चुका था, लिहाजा मैं अपने उन्हीं चुने हुए साथियों को लेकर शहर से काफी दूर ढाक के जंगल में निकल गया। पुलिस को अब भी मेरी तलाश है। वह मेरी तलाश में है। इस समय मेरे गिरोह में बाइस आदमी हैं। आज तक कोई पकड़ा नहीं गया और न किसी को सजा ही हुई। हम लोग अमीरों को लूटते हैं, वह भी अनावश्यक नहीं। गरीबों और असहायों की हम सब पूरी-पूरी मदद करते हैं। मुझे अपनी इस वृत्ति से घृणा नहीं है, मैं जानता हूं कि अगर अमीरों की बस्ती बढ़ती गई तो गरीबों को वे गाजर-मूली की तरह चबा जायेंगे। इस देश में श्रम पर पूंजी का शासन है। तभी तो यह बहुत पीछे है। यहाँ के चन्द पूंजीपति लोग जनता को कठपुतली की तरह नचाते हैं। आज देश आजाद है। राष्ट्र में प्रजा तंत्र है। इसको फलने फूलने के लिए पूंजीवाद का अन्त होना बहुत आवश्यक है। हमेशा से बड़ी मछली छोटी मछली को खाती आयी है। आज भी हर समर्थ असमर्थ को दबाये है पता नही देश का भविष्य क्या हो।"

संगीत की बात समाप्त होते ही कुमारी बोल उठी—"एक बात बतलाऊं संगीत भइया, मानोगे ?"

"क्यों नहीं।"

तब कुमारी मुस्कराई और धीरे से बोली—"अब तुम इस राह को छोड़ दो। तुमने महाजन से बदला ले लिया, पुलिस का डर अब भी तुम्हें बना है। मैं तो तुम्हें यही सलाह दूंगी कि कल ही अदालत में जाकर आत्मसमर्पण कर दो। तुमने केवल डाके डाले हैं, लोगों को लूटा है, किसी की हत्या नहीं की। अदालत तुम्हें माफ कर देगी। फिर तुम हंसी-खुशी अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करो। आचार्य विनोबा भावे की योजना के अन्तरगत जो डाकू आत्मसमर्पण कर दे, उन्हें कम से कम दण्ड दिया जायगा। उसके बाद उन्हें पूरा पूरा अधिकार होगा कि वे सामाजिक जीवन व्यतीत करें। तुम भी मुक्त हो जावोगे। फिर इसके बाद के निर्माण में अपना सहयोग दो, एक दिन वह आयेगा कि यही जनता तुम्हारी भूरि-भूरि प्रसंशा करेगी।"

कुमारी की बातों का संगीत पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा [illegible]

क्षण तक सोचता रहा फिर बोला—"मैं आज ही जाकर अपने साथियों को आत्मसमर्पण के लिए राजी करता हूं। इससे एक लाभ और होगा कि सावित्री बहन पर मुकदमा नहीं चलेगा। मैं अपने दल के सहित कल ही अदालत में हाजिर हो जाऊंगा। क्योंकि मेरी इच्छा समाज-सेवा करने की है लुकछिप कर यह कार्य नहीं हो पाता। इसमें बाधा पड़ती है। मैं खुलकर जन-सेवा करूंगा। मेरी जिन्दगी का एकमात्र यही उद्देश्य है।"

अनिल ने भी संगीत की बात का समर्थन किया। उसने कहा—"जो परमार्थ की ओर जाना चाहते हैं उन्हें कोई भी नहीं रोक सकता। संगीत तुम्हारा प्रायश्चित है कि तुम अपने को अदालत में सौंप दो।"

सावित्री भी संगीत के इस प्रस्ताव से पूर्णतया: सहमत थी। वह जितनी देर वहां बैठा, सब में वही चर्चा चलती रही। संगीत चला तो कुमारी की आंखों में आंसू आ गए। अनिल ने शुभ कामनाओं के साथ उसे विदा किया। वह जब चला तो मुस्करा रहा था। आज उसके पुराने चोले में नये प्राण बोल रहे। वह पैर रखता पृथ्वी पर लेकिन उसे लगता कि वह हवा में उड़ा जा रहा है।

कुमारी देर तक बैठी रही। प्रातः उसे नींद आयी। वह सोचती रही कि अगर भगवान ने चाहा तो संगीत समाज के लिए एक दर्पण बन कर रहेगा। सावित्री से भी उसकी बातें हुयीं, वह उनके सर्वथा अनुकूल थी। यह जान कर कुमारी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

०

२७

दूसरा दिन बीत गया। कुमारी प्रतीक्षा करती रही संगीत नहीं आया तब कुमारी के मन में यह संदेह घर करने लगा कि कहीं संगीत के

साथियों ने उसका प्रस्ताव नामंजूर तो नहीं कर दिया। आदमी जब किसी संस्था को लेकर चलता है तो वह बहुमति के बिना कोई काम नहीं कर सकता है।

तीसरे दिन प्रातः जब कुमारी बैठी अखबार पढ़ रही थी तो संगीत सहसा उसके सामने जा कर खड़ा हो गया। वह प्रसन्न था, मुस्करा रहा था। उसने कुमारी के पैर छुए। फिर अनिल की ओर उन्मुख हो कर बोला—"अनिल बाबू आज आप मेरे साथ कचहरी चलिये। मेरे सभी साथी नीचे खड़े हैं वह आत्मसमर्पण करने के लिये तैयार हैं। आप ही नहीं कुमारी और सावित्री बहन भी अदालत चलेंगी।"

अनिल को संगीत की बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह उसका चेहरा देखना लगा इतने में संगीत फिर बोल उठा—"बस तैयार हो जाइये देर न कीजिये ९ बज रहे हैं।" सावित्री रसोई में थी कुमारी ने उसे आदेश दिया कि जल्दी से खाना तैयार कर ले तो फिर हम सब कचहरी चलेंगे।

थोड़ी देर बाद संगीत ने अनिल के साथ भोजन किया। कुमारी ने उसके साथियों के लिये भी पूछा तो उसने कह दिया कि वे सब खा-पीकर आये हैं।

सेशन जज की अदालत में संगीत जब पहुँचा तो ग्यारह बजे थे। उसने जाकर जज महोदय को अभिवादन किया फिर खड़ा हो गया। हाथ जोड़ और धीरे से कहने लगा—"हुजूर मैं ही हूं डाकू सरदार संगीत। पुलिस बहुत दिन से मेरी तलाश में है। मैं हुजूर की शरण में आया हूं। मेरा अपराध क्षमा कर मुझे समाज में रहने की इजाजत दे। आप ही माई-बाप हैं हुजूर मेरे साथी भी सब हाजिर हैं। यह सब अदालत में आत्समपर्ण करने आये हैं।"

जज ने संगीत की ओर देखा फिर लगातार उसने उससे कई प्रश्न किये। थोड़ी देर बाद उसे पुलिस के सुपर्द कर दिया गया। वह साथियों सहित जब अदालत से हवालात की ओर चला तो जाते-जाते कुमारी के चरण स्पर्श करते गया। इस समय वह आवश्यकता से अधिक प्रसन्न था।

अनिल कुमारी और सावित्री के साथ घर लौटे आया रात को जब त[illegible] सब लोग सो नहीं गये तब तक संगीत की ही चर्चा चलती रही। [illegible] संगीत पुलिस की प्रिजनरवान पर बैठे जेल पहुंचा। वह हवालात की बैर

वन्द कर दिया गया। वहां वह सोच रहा था कि कुमारी की वाणी में जादू है। यह उसकी ही प्रेरणा का फल हैं जो मैंने आत्मसमर्पण किया। यही तो कहा जाता है कि अच्छी संगति पाकर आदमी सदाचार की ओर अग्रसर होता है।

संगीत का ध्यान सावित्री की ओर गया तो उसका मन कहने लगा कि सावित्री में भी परिवर्तन हुआ है। यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है। कुमारी दया की देवी है करूणा की भंडार। उसकी संगति में सावित्री खूब निखरेगी-खूब निखरेगी। लोग उसकी प्रशंसा करेंगे प्रशंसा।

संगीत अवसर पाकर अपने साथियों को भी समझाता। उनसे कहता कि अब हम लोग नई दिशा की ओर मुड़ चुके हैं। कानून हमारे साथ वड़ी से वड़ी रियायत करेगा। दण्ड कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा। लेकिन उसके वाद हम लोगों का मुंह उजला हो जायगा हम समाज की दृष्टि में उपेक्षित पात्र नहीं प्रगतिशील कहे जायगें। प्रयत्न और परिणाम हमारे दो ही रास्ते होंगे। इस तरह संगीत अपने साथियों का मन बहलाता। उन्हें आश्वासन देता और वह स्वयं जल्दी का इच्छुक था कि जल्दी से जल्दी उसके मुकदमे का फैसला हो जाय।

संगीत मन ही मन कुमारी को सराहता था कि उसने अंधेरे में उसे रोशनी की राह दिखलायी है। वह उसके लिये सहायक सिद्ध हुई। उसने उसे भाई वनाया है। तभी तो वहन का हक अदा कर दिया है।

संगीत जव तक सो नहीं गया कुमारी के प्रति सोचता रहा। स्वप्न में भी उसने कुमारी को देखा। उसने अपने साथियों से जिक्र किया और मन ही मन उसके प्रति अगाध श्रद्धा से भर आया।

●

२८

होली के बाद सावित्री के मुकदमे की तारीख पड़ी। संगीत हवालात में था। वह अदालत में हाजिर किया गया। उसके बयानों के आधार पर कि सावित्री निर्दोष है वह डाकुओं के दल की नहीं है, मुकदमा खारिज हो गया। अब जाकर सावित्री की जान में जान पड़ी। उसका जी ऊबा था। उसने कुमारी से कहा कि मैं कुछ दिन के लिये गोपालपुर जाऊंगी। यद्यपि कुमारी इसके लिये सहमत नहीं थी; लेकिन फिर भी उसने उसे गांव जाने की अनुमति दे दी।

सावित्री जब गोपालपुर पहुंची तो सास कुन्ती ने उसे बहुत धिक्कारा। उसने कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आई। डूब मरतीं चुल्लू भर पानी में। यहां मुंह दिखलाने क्यों आई हो। आजतक इस खानदान की बहू-बेटियां पुलिस-थाने नहीं गईं और न हवालात में बन्द हुईं। तुमने नाक कटवा दी कुटुम्ब की। एक बड़ी बहू कुमारी भी तो है। आज तक उसे कोई छू नहीं पाया।"

सावित्री चुपचाप सुनती रही उसने सास को कुछ भी जवाब नहीं दिया। सारे दिन रोती रही। ससुर ने भी उसे खूब जली-कटी सुनाई। सावित्री जानती थी कि बड़बड़ा लेने से मनुष्य का क्रोध कम हो जाता। उसने मन ही मन तय कर लिया था कि अब मैं कुमारी की नीति अपनाऊंगी। सेवा-भाव से सास-ससुर को जीतूंगी। जब मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा का उदय हुआ है तो उनमें भी स्नेह का अंकुर उपजेगा। इसमें कोई संदेह नहीं।

गोबिन्द बाबू तथा कुन्ती ने तो सावित्री को बहुत कुछ कहा; लेकिन रामबाबू ने उसे एक शब्द भी नहीं कहा। उसने जब उनके चरण स्पर्श किये तो वे उसकी मंगल कामना करते हुये आशीर्वचन बोले—"सौभाग्यवती हो बहू। युग-युग जियो। दूध से नहाओ और पूतों से फलो। अशोक को नहीं लाईं। वही तो एकमात्र हम सबका खिलौना है।"

इस पर सावित्री संकोच से गड़ गई। उसने अपना घूंघट तनिक और लम्बा कर लिया फिर धीरे से बोली—"वह नहीं आया। मैंने तो बहुत जोर दिया। कहने लगा कि मैं गांव नहीं जाऊंगा। अपनी बड़ी मां के पास रहूंगा।"

"कोई बात नहीं बहू, कोई बात नहीं। ऐसे ही सब लोग हिल-मिल कर रहो। मुझे इसी में खुशी है। क्या हुआ तुम्हारे मुकदमे का? सुना है कि........।"

अभी रामबाबू यही कह पाये थे कि सावित्री बीच में बोल उठी—आपके आशीर्वाद से मुकदमा खारिज हो गया दादा।"

इसके बाद सावित्री रोने लगी। उसने रो-रो कर अपना सब हाल रामबाबू को बतलाया। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सावित्री में अभूत-पूर्व परिवर्तन हुआ है। वे देर तक उसे समझाते रहे। फिर कुन्ती और गोबिन्द बाबू को एकान्त में बुलाकर यह हिदायत कर दी कि वे दम्पति सावित्री को कुछ न कहें। वह स्वयं ही अपने किये पर बहुत ज्यादा शर्मिन्दा है।

एक दो, और फिर धीरे-धीरे कई दिन बीत गये। सबने देखा कि सावित्री की दिनचर्या ही बदल गई है। वह भलख सवेरे उठती। गृहकार्यों से निवृत्त हो ससुर के लिये पूजा का सामान रखती। सास के लिये भी आसन बिछा उस पर रामायण, गीता और सुखसागर आदि पुस्तकें रख विनय पूर्वक कहती—"पाठ कर लो मां! पूजा का समय हो गया है।"

कुन्ती बहू का मुंह देख कर रह जाती। वह सोचने लगती कि सावित्री पर कुमारी का प्रत्यक्ष प्रभाव है। उसमें अब डाह नहीं रहा। काश! यही अगर पहले हो जाता तो कितना अच्छा होता।

गोबिन्द बाबू ने रामबाबू को बतलाया कि अब उनकी छोटी बहू के स्वभाव में काफी तबदीली हुई है। वह बड़ों का बड़प्पन रखना सीख गई है। यह सुनकर बूढ़े रामबाबू का मन हर्ष से आलोड़ित हो उठता।

दोनों समय रसोई सावित्री ही बनाती। वह कुन्ती को कोई भी काम छूने नहीं देती। घर की महरी बहू का बड़ा सम्मान करती। नौकर-चाकर भी उससे खुश रहते।

अब गोपालपुर के घर-घर में चर्चा थी कि अनिल की दूसरी बहू बड़ी सुशील हो गई है। वह रोज रात को सास के पैर दाबती है। उसे उठा-कर पानी नहीं पीने देती।

सचमुच सावित्री पहले की अपेक्षा अब अपने में शान्ति का अनुभव करती। वह कभी-कभी सोचने लगती कि कुमारी में अगर चरित्र-बल न होता तो वह किसी की भी प्रिय नहीं बन सकती थी। समाई प्रत्येक में नहीं होती।

मैं अब समझी कि जिसमें समाई होती है, वही बड़ा कहलाता है। आदमी की तारीफ कभी नहीं होती, लोग उसके गुण और दोषों का बखान करते हैं।

सावित्री जब पति के प्रति सोचती तो पाती कि उनमें कोई भी अभाव नहीं है। जो कुछ भी कमी है वह मुझमें। मैंने हमेशा उन्हें तंग किया, कभी चैन से नहीं बैठने दिया। वे और कुछ नहीं, केवल शान्ति चाहते थे। काश ! मुझे पहले ही सुबुद्धि आ जाती तो ये दुनिया भरके झंझट न खड़े होते।

जब ममता अधिक जोर मारती तो सावित्री की आंखें गीली हो जातीं। उसकी आंखों के सम्मुख अशोक का चेहरा आ जाता। वह संतोष से भर जाती कि कुमारी मुझसे अधिक उसका ख्याल रखती है। जन्म मैंने दिया है; किन्तु सच्चे अर्थों में उसकी मां कुमारी ही है।

इस प्रकार अब सावित्री के मन का सारा कलुष धुल गया था। वह अपने को परिवार का एक अंग समझती थी। उसने कुमारी को अपनी कुशल-मंगल का पत्र लिखा। जवाब आया, वह उसने पढ़कर सास को सुनाया। कुन्ती मन ही मन फूली नहीं समा रही कि अब सावित्री और कुमारी में कोई भेद नहीं रह गया है। दोनों ही आज्ञाकारिणी हैं। दोनों ही उसकी सेवा करती हैं।

०

२१

चैत का महीना बीत चुका था। ऋतु परिवर्तन के साथ ही साथ संगीत में भी नित्य नया परिवर्तन हो रहा था। वह सोचता कि जल्दी से मुकदमे की कार्यवाही शुरू हो और वह किसी परिणाम पर पहुँचे। अगर

सजा होती है तो उसे भोगे और यदि साफ छूट जाता है तो कुमारी के सहयोग से समाज में जाकर सेवा कार्य करे। वह अपने साथियों को भी अवसर पाकर समझाता कि वह उनसे पृथक नहीं है। अदालत के फैसले के वाद जब वे सब छूटेंगे तो वह उनको लेकर एक संघ बनायेगा। उस संघ का मुख्य उद्देश्य होगा जन-सेवा।

इस बीच जेल में कुमारी दो बार संगीत से मिलने गई। उसके साथ अनिल भी गया था। दम्पति ने संगीत को खूब समझाया। कुमारी ने कहा—"सब दिनों का फेर होता है संगीत भइया। आदमी बुरा नहीं होता, समय चक्र उसे परिस्थितियों में डाल देता है। एक दिन वह आता है जब सोने में सुगन्ध आती है। पत्थर में भी फूल खिलते हैं संगीत। जगत परिवर्तन-शील है।"

ऐसे ही अनिल ने भी संगीत को प्रोत्साहन दिया। वह बोला—"हम लोग तुम्हारे साथ हैं संगीत। किसी बात की चिन्ता मत करना। मुकदमे की पैरवी में कुछ भी उठा नहीं रक्खा जायेगा। इससे तुम निश्चिन्त रहो। जिनके मन में परमार्थ की भावना आ जाती है उनकी मंजिल अपने आप ही आसान हो जाती है।"

कुमारी तथा अनिल की बातों का संगीत पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसका निश्चय और भी अधिक दृढ़ हो गया। कुछ दिन बाद उसका मुकदमा आरम्भ हो गया। अनिल ने फौजदारी का ऊंचा वकील किया।

पहले दिन संगीत के बयान हुये। उसने सहर्ष अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इसके बाद एक-एक करके उसके सभी साथियों की पेशी हुई। इस कार्य में पूरे तीन दिन लग गये।

संगीत के वकील ने अदालत से यह प्रार्थना की कि अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर रहा है। उसके दंड में कुछ कमी कर दी जाय।

जिस दिन निर्णय सुनाया जाने को था अनिल और कुमारी ठीक समय पर कचहरी पहुँच गये। इजलास खचाखच भर रहा था; लेकिन जज के आते ही वहाँ एकदम सन्नाटा छा गया। कुमारी का कलेजा धकधक कर रहा था कि कहीं संगीत को लम्बी सजा न सुना दी जाय। उसके साथ रियायत होना बहुत जरूरी है। एक तो वह स्वयं अपराध कुबूल कर रहा है और दूसरे डाकू होते हुये भी उसने आजतक एक भी हत्या नहीं की।

कुमारी और अनिल अवाक थे। जूरी अलग बैठे निर्णायक के बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। पेशकार ने आते ही जज से आवश्यक कागजों पर दस्तखत करवाये। संगीत सिर झुकाये खड़ा था उसके साथी नीरवता के व्यापार में बह रहे थे। कोई कुछ सोचता और कोई कुछ इजलास में लगा क्लाक टिक-टिक कर रहा था सालिंग पंखा नाच रहा था अपनी पूरी रफ्तार में। सहसा जज ने मेज पर जोर से हाथ पटका उसने कहा खामोश! अभियुक्त संगीत कुमार और उसके साथियों ने आत्म समर्पण करके अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। इसके अलावा आज तक उन पर हत्या का कोई आरोप नहीं है। वे सामाजिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। अदालत उन्हें क्षमा करती है। प्रत्येक को छः महीने की सजा देती है। इसके बाद उन्हें पूर्ण अधिकार हैं कि स्वेच्छा से रहें और सामाजिक तथा परिवारिक जीवन व्यतीत करें।"

यह सुनते ही कुमारी रो दी। अनिल के भी आंसू आ गये। जब सिपाही दण्डित लोगों को लेकर चले तो कुमारी संगीत के पीछे भागी। वह रोरो कर उससे कहने लगी—"भइया घवड़ाना मत। छे महीने बात कहते बीत जायेंगे। मैं जेल आऊंगी। मेरी राह देखना। मैं......।"

कुमारी की बात पूरी नहीं हो पायी सिपाही आगे बढ़ गये। तब संगीत ने जोर से पुकार कर कहा—"दीदी! मैं आपके वचनों पर दृढ़ हूं। तुम्हारा आशीर्वाद मेरी रक्षा करेगा जरूर आना। दीदी मैं जेल में तुम्हारी राह देखूंगा।"

कुमारी इसके आगे कुछ बोल नहीं पाई। वह रोने लगी सुबक-सुबक कर अनिल ने उसको समझाया और फिर उसे धीरे धीरे अपने साथ घर लिवा लाया।

घर में कुमारी संगीत के प्रति सोच रही थी कि अब संगीत मुक्त होकर समाज सेवा करेगा इसमें कोई संदेह नहीं। आज वह प्रसन्न था उसके एक भी आंसू नहीं आया उसमें जीवट है। वह होनहार युवक है। काश! उसे यह छः महिने की भी सजा न मिलती तो मैं देवता का प्रसाद चढ़ाती। देवी के मंदिर में जाकर घी के दिये जलाती। अब उस दिन सत्य नारायण भगवान की कथा सुनूंगी और लड्डू चढ़ाऊंगी गणेश जी पर जिस दिन मेरा भैया संगीत जेल से आयेगा। ईश्वर कितना दयालु है उसने

मेरे कोई भाई नहीं था। उसने संगीत को मुझसे मिला दिया मैं बहन बन गयी उसकी और यह मेरा भाई। क्या वह सौभाग्य कुछ कम है!

इधर कुमारी घर में संगीत के प्रति सोच रही थी। और उधर संगीत हवालात में मन ही मन उस पर श्रद्धा के फूल चढ़ा रहा था। वह सोच रहा था कि कुमारी में स्नेह का भंडार है। और है अटूट प्रेम की भावना। अपनत्व तो जैसे उसमें कूट कूट कर भरा है। उसकी वाणी में जादू है। उसकी दृष्टि में सहानुभूति, शिष्टता उसकी चेरी है। वह प्रत्येक प्रतिकूल को अपने अनकूल बना लेती है। यह उसकी विशेषता है और एक बहुत बड़ा गुण।

संगीत जब कभी अकेला होता तो उसे कुमारी की याद आ जाती वह मन ही मन उसका चित्र अपनी आंखों के आगे खींच कल्पना करने लगता कि अनिल भी आदमी अच्छा है कोई बुरा नहीं। वह भी मेरे माफिक है उसने पूरा पूरा साथ देने का वचन दिया है। यह मेरा सौभाग्य था जो कुमारी ने मुझे ठुकराया नहीं भाई के रूप में स्वीकार किया मेरी पीठ ठोंकी और मुझे आशीर्वाद दिया।

संगीत कुमारी और अनिल के प्रति इसी तरह विचारविमर्श किया करता। संतोष की अनुभूति होती और मन ही मन सुख मिलता और वह सोचने लगता कि जब गर्दिश के दिन आते हैं तब आदमी की बुद्धि और उसका विवेक दोनों ही भ्रष्ट हो जाते हैं। और ऐसे ही जब निर्माण की बेला आती है तो मुर्दा जीवित हो उठता है। उसकी सांसें चलने लगती हैं। बिना संयोग के कुछ भी नहीं होता। आदमी कोशिश करके हार जाता है और वह हारा हुआ मनुष्य ही समाज में हेय कहलाता है।

इस तरह संगीत कभी-कभी अपने साथियों से भी बातें करने लगता। वे उसकी बातें ध्यान पूर्वक सुनते और उन पर विचार करते तो पाते कि जो कुछ हो रहा है वह बिल्कुल ठीक है सब कुछ भगवान की इच्छा पर निर्भर है बिना उसकी मर्जी के पत्ता तक नहीं डोलता।

०

३०

डाकू सरदार संगीत जब जेल से छूट कर आया तो सबसे पहले उसने अपने साथियों को बिदा किया। वे सब अपने-अपने घर आये। फिर वह सीधा कुमारी के घर आया, उसकी चरण-रज ले अपने से लगा लिया। आशीर्वाद पाया। फिर वह गोपालपुर सावित्री से मिलने गया। सावित्री की धाक जम रही। वे लोग उसकी प्रशंसा के पुल बांधते कि गोविन्द बाबू की छोटी बहू साक्षात लक्ष्मी बन गयी है, लक्ष्मी। वह गांव की स्त्रियों के साथ ऐसा व्यवहार करती मानों उसकी सगी हों। गोविन्द बाबू ने संगीत को मेहमानखाने में टिकाया, और उसने, अपना सब हाल बतलाया। सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए। उसका आतिथ्य किया। सावित्री ने उसे घर के अन्दर बुलाया और कुन्ती ने उसका मुंह मीठा किया। सावित्री भइया कह कर मिली और वह उससे दुख सुख की बातें करने लगी।

संगीत ने गांव गोपालपुर को खूब ध्यान पूर्वक देखा। वह वहां के किसानों से मिला मुखिया से बात की। उसकी समझ में आया कि यह छोटी सी बस्ती ही उसके विकास की पहली कड़ी होगी। उसने लोगों में नव निर्माण की भावना भरनी चाहिए इसके लिए वह गांव के प्रधान फिर सभापति से मिला। जिस तरह पंचायत होती है वह चाहता था कि एक आम सभा हो जिसमें गाँव के बच्चे और बूढ़े सभी शामिल हों। वह अपनी योजना को कार्य रूप में परिणित करने के लिए व्यग्र था।

धीरे-धीरे संगीत को गोपाल पुर में एक सप्ताह बीत गया। वह वहां के लोगों के लिए नया पुराना हो गया। लोग उससे आशा करने लगे कि भविष्य में गांव की उन्नति के लिए यह व्यक्ति सहायक सिद्ध होगा लेकिन दुनिया का दस्तूर बदला नहीं जा सकता। रोज दिन होता है फिर रात आती है जहां मौत का मातम दिखलायी देता वहीं एक शहनाई बजती है सावित्री और संगीत का मिल जुल कर बात करना और निसंकोच हो[illegible] मिलना यह सब गांव की बड़ी बूढ़ियों को पसन्द नहीं आया। वे [illegible] गुप-सुप करने लगीं कि अरी सुन बगुला भगत बन गया [illegible]

विल्ली हज्ज को चली। यह जो आया है न संगीत सुदामा पहले डाके डालता था फिर सरकार से माफी मांगी। अरे इसकी लगी छोटी वहू सावित्री से तभी तो यहां आया है वड़े घर की वहू है भला कौन कह सकता है।

और कोई स्त्री कहती कि अरे नहीं यह इसका वचपन का यार है इसीलिए तो अनिल उससे नफरत करता है। वह शहर से चली आयी शायद रूठ कर आयी होगी। यह मनाने आया है। यह है पैसे वालों के घर के हाल। लोग इन्हें वड़ा आदमी कहते हैं।

और कोई कोई स्त्री तो यहां तक कहती है कि देख लेना वहना एक दिन सावित्री संगीत के साथ भाग जायगी।

जिस तरह वारूद का गोला छूटने के वाद सीधा आसमान की ओर भागता है वैसे ही चर्चा भी फैलती। सर्वत्र एक ही वात हर जगह सुनाई पड़ती। सावित्री के कानों में भनक पड़ी कि उसकी वदनामी हो रही है और वह भी संगीत के कारण तो उसे वहुत दुख: हुआ और उन स्त्रियों की ना-समझी पर तरस आया जिन्होंने उसे दोष लगाया था वदनाम किया था।

जव सावित्री के कान सुनते सुनते पक गए तो उसने एक दिन संगीत से कहा—"संगीत भइया तुम यहां से चले जाओ। तुम्हारे पीछे गांव की स्त्रियां मुझे नाहक ही वदनाम करती हैं मैं अव वदनामी से वहुत डरती हूं क्योंकि उसका परिणाम अच्छा नहीं होता भविष्य पर तो वाद में पड़ता है और वर्त्तमान के लिए तत्पर रहना होता है। मुझे क्षमा करो यहां से चले जाओ।" इस पर संगीत ने सावित्री को जवाब दिया वह दृढ़ता के साथ वोला—"मुझे ऐसी वदनामी का डर नहीं सावित्री। अगर आलोचना न हो तो मनुष्य आगे न वढ़े। मैं आज ही मिलूंगा मुखिया से और सरपंच से उनसे कहूंगा कि वे एक वहुत वड़ी सभा वुलाएं। उसमें मैं कुछ कहूंगा लोगों को समझाऊंगा कि वेकार के वहस में न पड़े हर गुलाव में कांटे होते हैं। हर मधुमक्खी के छत्ते में सैकड़ों डंक लेकिन वहां गंदगी का प्रश्न ही नहीं उठता है। सवके रास्ते अलग-अलग हैं कोई भाई है तो कोई वहन वही वहरहाल सव एक दूसरे के हितैषी।

सावित्री और संगीत में देर तक वातें होती रही। इसके वाद संगीत मुखिया के घर गया। गांव के प्रधान से मिला उसकी वात मान ली गयी और और उसे गांव में एक वहुत वड़ी सभा करने की इजजात दे दी गयी।

सावित्री ने यह सुना तो वह फूली नहीं समायी। गांव घर में चर्चा थी कि कल एक सभा था। उसमें संगीत लेक्चर देगा और वह बतलाएगा कि पिछड़े हुए गांव तरक्की कैसे कर सकते हैं।

संगीत ने गांव से दो आदमी भेजे थे कि वे जाकर कुमारी और अनिल को ले जाए। संयोग की बात दूसरे दिन सवेरा होने के थोड़ी देर बाद ही वे दम्पति आ गए।

३१

गांव गोपालपुर के बीचोंबीच में बरगद का एक बहुत पुराना और बड़ा पेड़ था। उसकी वौं इतनी अधिक जमीन पर थी कि एक नहीं अनेक तनें लग रहे थे। उसी के नीचे एक चबूतरे पर गांव के सरपंच मुखिया और अन्य वहां के निवासी एकत्रित थे। मन्च बना था कई तख्त डाल कर। पहले प्रधान ने अपना वक्तव्य दिया वह बोला—"आप लोगों के सामने संगीतकुमार कुछ अपने जीवन का हाल रक्खेंगे और कुछ लोगों में गलत धारणा आ गयी है उसकी शान्ति पूर्वक तसल्ली कर दी जायगी। वह आदमी कैसा है यह उसकी समझ बता देगी। बस अब आप लोग ध्यान से सुनिए संगीतकुमार अपनी बात कह रहे हैं।

संगीत पहले से ही तैयार बैठा था वह उठ कर खड़ा हो गया फिर सभापति और जन-साधारण को नमस्कार कर वह भाषण जैसा देने लगा कि तंग विचारों के लोग कभी अच्छी बात नहीं सोचते और उनमें स्वार्थ प्रधान रहता है। वे सबसे पहले अपना हित देखते हैं दूसरे का नहीं। अब जमाना इस

तरह का लगा है कि फूंक-फूंक कर कदम रखो और छान-छान कर पानी पियो । मैंने इस गांव को बदनाम नहीं किया मैंने इसमें जागरण के गीत गाए हैं और वही हद तक सफल भी हुआ ।"

संगीत जब बोल रहा था तो वहां जन समुद्र में पूर्णतया सन्नाटा था लोग माटी के बुत बन गए थे वे कान उसकी ओर किए थे । वह कह रहा था—"हमें चाहिए कि हम सब लोग मिल-जुल कर प्रेम से रहें । एक दूसरे के काम आएं सहयोग और सहकारिता को अपनाएं और मन में ऐसे भाव लाएं कि एक दूसरे पर दृढ़ विश्वास लाएं कोई भी अपने को अकेला न महसूस करे । सबसे पहली बात तो हम अपनी उपज बढ़ाएं भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की खेती ही सबसे उत्तम है । हम थोड़ा सा काम लें हाथ में और इस गांव का नक्शा एकदम बदल दें लेकिन यह सब तभी हो सकता है जब हम सब एक हों ।"

कुन्ती संगीत की बातें सुन रही थी वह निरंतर कहे जा रहा था कि जनता को यह चाहिए जनता को वह चाहिए । वह बार-बार सावित्री का मुंह देखती और कहने लगती कि संगीत की बातों में बल है लोग उसका कहना मानेंगे । ऐसे ही राम बाबू और गोविन्द में तर्क वितर्क हो रहा था कि संगीत में प्रतिभा है वह लगातार कई घंटे तक बोल सकता है लोगों को अपनी ओर मोड़ सकता है ।

और संगीत यह जादू डाल रहा था सब पर वह कह रहा था— "इस गांव के निवासियों को चाहिए कि वे थोड़े हों अथवा अधिक वे सतत उद्योग करें केवल खेती पर ही निर्भर न रहें क्योंकि पैसा जब तक नगद नहीं होता आदमी का मन छोटा बना रहता है । उस पैसे के लिए मैं गांव की जनता से ही सहयोग चाहूंगा जिससे कुछ संस्थाएं खुलें और लोगों का उनके द्वारा कल्याण हो ।"

सावित्री ने जब संगीत का वक्तव्य सुना तो वह भी प्रभावित हुयी उसमें प्रेरणा जागी और वह कुछ बोलने के लिए उद्यत हो गयी । कुमारी मौन थी वह संगीत का वक्तव्य सुन रही थी । अनिल भी हो रहा था मग्न वह अपने मापदंड द्वारा इस बात का पता कर रहा था कि गांव के लोग अपने उत्तर-दायित्व का कहां तक पालन कर पाएंगे । इस तरह उसने गांव वालों के लिये जो कुछ ही कहा वह सब उनके हित में और उनके मनोनुकूल । वह अब अपना

भाषण समाप्त कर बैठा तो सभा में करतल ध्वनि हुई और लोगों में यह विश्वास जागा कि यह आदमी गांव के लिए कुछ करेगा।

अनिल और कुमारी बहुत प्रसन्न थे वे मन ही मन सोच रहे थे कि सचमुच संगीत में प्रतिभा है और जबतक प्रतिभा नहीं होती बुद्धि का विकास नहीं होता।

और सबसे बड़ी बात जो थी वह यह कि संगीत को गांव गोपाल क्यों मन भा गया था। वह अनिल की जन्मभूमि थी इसी लिए वह उसे अधिक महत्व देता। जब सब लोग पास-पास बैठते तो कुमारी और सावित्री दोनों संगीत से बातें करते नहीं थकते। अब गांव में कोई भी सावित्री को आधी बात नहीं कहता। संगीत के प्रति भी लोगों की धारणा यह बन गयी थी कि वह गांव को नया जीवन देने आया है अगर उसे सबका सहयोग मिल गया तो वह एक दिन अवश्य सफल होगा इसमें कोई संदेह नहीं है।

३२

दूसरे दिन भी गांव में एक सभा का आयोजन किया गया आज तो पूरे का पूरा गांव ही उमड़ पड़ा था। सावित्री माथे पर थोड़ा सा घूंघट डाल मंच पर खड़ी हुई। उसने कहना आरम्भ किया—"हमारा देश कृषि प्रधान है। हमारे किसान ही हमारी पूंजी हैं। खेती हमारा मुख्य धन्धा है। हम खेतिहर हैं। लेकिन सोचो ! फिर भी हमारे देश को हमारे देशों से अनाज मंगाना पड़ता है। हमको चाहिये कि हम सब मिल कर उपज बढ़ायें। जब पैदावार अच्छी होगी तो किसान खुशहाल होंगे। कपास भी हमारे यहां कम नही पैदा

होती। इस तरह हम अपना खाना और कपड़ा खुद आप जुटा सकते हैं। मेहनत करो। अकेले नहीं सब लोग मिल कर काम करो एक घुंघरू बांध कर नाचा नहीं जा सकता जब अनेक बजते हैं तभी छम-छम की आवाज आती है। तो भाइयो और वहिनो! वीणा उठा लो। आप सब लोगों को भगवान की कसम है। इस गांव को नमूना बना दो और इस धरती को स्वर्ग। श्रमदान का अर्थ आप लोग तो समझते होंगे। मतलब यह कि तुम खेत में काम करो। तुम हमारा हाथ बटाओ तुम्हारी दुःख तकलीफ मेरी है। गांव में पेड़ लगाओ सफाई इतनी रखो कि एक मक्खी न बैठने दो बस फिर देखो! यहां सदा बहार आयेगी रामराज्य क्या था? सुख और शान्ति का एक प्रतीक।"

सभा में सन्नाटा छा रहा था लोग ध्यान पूर्वक सावित्री की बातें सुन रहे थे कुमारी अनिल के पास अशोक बैठा था। गोविन्द रामदादा के कान में कुछ कह रहे थे और कुन्ती दांत निपोर कर हंस रही थी मुखियों की घर वाली उससे कह रही थी कि छोटी बहू तो जैसे बलिस्टर(बैरिस्टर)! अरे मालिकिन इसने वकालत कब पास की यह तो नेता लगती है कांग्रेस की, ऐसे ही लेक्चर देती हैं विजय लक्ष्मी पण्डित। अरी बहना देखो तो यह तो हाथ हिलाती हैं। उंगली से बताती हैं यह तो बड़ी काबिल निकली सारा गांव तो इसकी बुराई करता था। अब तुम्हारे गले में फूलों का हार पड़ेगा मलिकिन। तुम्हारी बड़ी बहू तो नेक और सुशील ही थी लेकिन यह तो बन गई नाइडो अरे वही सरोजनी नायडू बड़ी काबिल औरत थी।

सरपंच, सभापति, मुखिया और चौकीदार इनका समाज अलग जुड़ रहा था। सरपंच बीच-बीच फुसफुसाता मुखिया के कान में कहता कि सरगना भाई गोविन्द बाबू की तकदीर अच्छी है बड़ी बहू और लड़का तो सज्जन था ही इस छोटी ने तो कमाल कर दिया। धरती से आसमान में पहुंच गई। इसमें कितनी तमीज है। यह लाल गुदड़ी में छिपा था। बड़े आदमियों के बेटी बेटे बहू और दामाद सबमें लियाकत होती है। यह खानदानी असर होता है।

और सावित्री सबसे विनयी स्वर में कह रही थी—"धरती हमारा धन है धरती हमारी गोद धरती हमारी माता है इसकी पूजा करो यह फल देगी फूल देगी और दूध देगी इस माटी को माथे से लगा लो यह तुम्हें आशीर्वाद देगी। भाइयो और बहिनो मेरी एक प्रार्थना है कि वैर एकदम भूल जाओ और जाति पांति और छुआछूत को एकदम चुनौती दे दो। सब लोग

जुट जाओ और कंचन बरसा दो मैं चाहती हूं कि मेरे इस गांव में एक महिला विद्यालय हो जो रात में लगे। जिससे सभी सम्भ्रान्त महिलाएं शिक्षा पाएं। कन्या पाठशाला के अतिरिक्त जूनियर हाईस्कूल, डाकखाना, व्यायामशाला मतलब अखाड़ा, आटा पीसने की चक्कियों कोल्हू और यह हो कि यहां रोज बाजार लगे। यह सब हो सकता है अगर हम लोग चाहें और होगा, होकर रहेगा। जब हमारा खून-पसीना बहेगा तो फल जरूर मिलेगा।"

इसी तरह सावित्री कई विषयों पर बोली उसने सफाई की ओर संकेत किया। फिर गांव की गन्दगी दूर करने पर जोर दिया उसने कहा कि कल प्रातः मैं फावड़ा चलाऊंगी यहां से सीधी सड़क बनेगी स्टेशन तक। और इस कार्य को हम गांव वाले ही करेंगे सभा में बार-बार तालियां बजती और वाह-वाह होती है। कुमारी ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में सावित्री का समर्थन किया उसने भी गांव से अपील की कि वह कन्धा से कन्धा मिलाकर चले। एक दूसरे को सहयोग दे तभी हम सब उन्नति कर सकते हैं।

अनिल को भी उकसाया बोलने के लिये संगीत ने तो उसने भी उसी पथ का प्रदर्शन किया जो राह कुमारी और सावित्री ने बतलायी थी। संगीत जब भाषण देने लगा तो लोगों में नव-चेतना आगई। उसने मुस्कराते हुए भविष्य के सबको दर्शन करवाये फिर कुछ बड़े-बूढ़े बोले। इसके बाद सभा विसर्जित हुई। घर में आकर अनिल ने कुमारी से कहा—"संगीत के त्याग का प्रभाव सावित्री पर बहुत पड़ा। सावित्री बदल गई कुमारी अब उससे मुझे नफरत नहीं है यह सब तुम्हारे संग साथ का असर है। तुम माटी को सोना बना लेती हो यह मैंने अब जाना।"

कुमारी मुस्कराई और धीरे से बोली—"किसी के संग साथ का प्रभाव नहीं यह संयोग है और ईश्वर की कृपा कि सावित्री को सद्‌बुद्धि आयी उसने अपने जीवन का स्वर बहुत ऊंचा उठा दिया। मेरी शुभ कामनाएं उसके साथ हैं संगीत उसका भाई है। और मैं बहन। उसकी योजना सफल होगी और इस गांव में जागृत आयेगी।"

कुन्ती उधर से आरही थी वह बड़ी बहू की बात सुन कर कहने लगी—"अरे बड़ी छोटी की तारीफ के पुल ही बांधोगी या कुछ और करोगी। जाओ उसका मुंह तो मीठा कर आओ सचमुच आज मैं बहुत खुश हूं। सावित्री फूलों से लदी हैं। उसके गले में तमाम मालायें पड़ी हैं।

इस पर कुमारी सास की आज्ञा पालन करने चलदी ।

तीसरे दिन भी गांव में सभा हुई फिर श्रमदान योजना को कार्यान्वित किया जाने लगा । पहला फावड़ा सावित्री ने मारा और सड़क खोदी जाने लगी । आज संगीत वना था मजदूर कुमारी हंस-हंस कर श्रमदान में लगी थी ।

इस प्रकार नित्य एक सभा होती । और उसमें कोई न कोई योजना बनाई जाती फिर उस पर विचार होता । सावित्री की चर्चा सर्वत्र थी हर घर उसके गीत गाये जा रहे थे । वह मेहनत से जुट कर काम करती लोगों को प्रोत्साहन देती । लोग उसे अपनी निर्देशिका मानते उसके निर्देश पर चलते । यह सब था लेकिन अनिल सावित्री से अब भी नहीं बोलता और वह भी अब तक उससे रूठी थी ।

एक दिन कुमारी ने पति को समझाया कि वह सावित्री को क्षमा कर दे और उसे अंगीकार कर ले । उसने अपना जीवन ही बदल दिया है ।

अनिल ने कुमारी की बात नहीं टाली । एक दिन जब सावित्री श्रमदान से लौट कर घर वापस आयी तो जाड़े की ऋतु में भी उसके माथे पर पसीना था । आज वृक्षारोपण का दिन था मेहनत अधिक पड़ी थी अनिल उसके कमरे में आ गया और अपने रूमाल से उसके माथे का पसीना पोंछता हुआ नीची दृष्टि कर अपराधी स्वर में कहने लगा—'मुझे क्षमा कर दो सावित्री मैंने तुम्हें समझने में भूल की । तुम में इतनी प्रतिभा है यह मैं नहीं जानता था ।"

सावित्री की आंखों में खुशी के आंसू आ गये वह सहज स्वर में बोली—"क्षमा मुझे मांगनी चाहिये भूल मेरी थी । तुमने कुछ भी नहीं किया मैंने ही तुम्हें परेशान किया उसका प्रायश्चित लोक-सेवा के रूप में हो यह मेरा दृढ़ निश्चय है । मुझे सहयोग दो मेरी मंजिल बन कर मेरी राह आसान करो । बस अब सावित्री को कुछ नहीं चाहिए ।"

अनिल ने सावित्री को वक्ष से लगा लिया । वह उसके बालों पर उंगलियां फेरने लगा दोनों में अतीत को लेकर कुछ बातें हुईं । फिर वे भावी योजना पर विचार करने लगे ।

उसी रात घर में यह चर्चा जोर पकड़ गई कि रामदादा तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं । गांव वाले उन्हें मना करते हैं । लेकिन वे नहीं मानते जाने को तैयार हैं ।

अनिल ने यह सुना तो वहुत दुःखी हुआ। अनिल ने कुमारी से कहा कि तुम जाकर रामदादा को मना करो वे तुम्हारी बात अवश्य मानेंगे।

इस तरह कुमारी और सावित्री दोनों एक साथ ही चल दीं रामदादा के पास उनके पीछे कुन्ती थी गोविन्द वावू भी चले आ रहे। संगीत उनका अनुकरण कर रहा था और सवके पीछे-पीछे चल रहा था यह सोचता हुआ अनिल कि रामदादा क्या सचमुच यहां से चले जायंगे। सुना है कि वे कहते हैं कि अब तीर्थ पर ही रहेंगे घर नहीं आयेंगे। यह नहीं होगा मैं दादा को जाने नहीं दूंगा। उन्हें नहीं पता कि भाग्य जागा है। उसमें जागरण होगा वे नहीं होंगे तो हमें आशीर्वाद कौन देगा हमारी हिम्मत को कौन वढ़ायेगा। हमारे सिर पर हाथ कौन रखेगा।

३२

राम वावू का कथन था कि अव उनके जीवन के चन्द दिन रह गये हैं। वे किसी तीर्थ पर जीवन यापन करेंगे। उन्होंने देख लिया कि उनके वंश की परम्परा कायम है। अनिल ही नहीं दोनों वहुएं भी प्रगति में योग दे रही हैं। गांव की काया पलट रही है। वह हंसी-खुशी जा रहे हैं। अपना शेष जीवन भगवत भजन में व्यतीत करेंगे।

यही नहीं पहले तो सव लोग समझ रहे थे कि अकेले रामदादा ही जा रहे हैं। गोविन्द और कुन्ती उन्हें मना करने आये हैं। लेकिन सभी चौंक गये जव सवने सुना कि कुन्ती और गोविन्द भी रामदादा के साथ जायेंगे।

सवसे पहले कुमारी आगे वढ़ी उसने रामवावू के पैर छुए

घूंघट के अन्दर से बोली—"मुझे भी अपने साथ ले चलो दादा मेरा काम समाप्त हो चुका है। सावित्री है अशोक है। इनकार मत करो मुझे अपने साथ ले चलो। आप के स्नेह की छाया मुझे जहां मिलेगी मैं वहीं रहूंगी।"

रामबाबू निरूत्तर हो गये वे कुमारी की ओर देखने लगे और चिन्तित होकर बोले—"अरे बहू तुम यह क्या कह रही हो। नादानी मत करो एक तो मैं अपने साथ किसी को भी नहीं ले जाना चाहता हूं। तुम्हारी सास और ससुर नहीं मान रहे हैं तो मजबूरी में उन्हें तो ले जाना पड़ेगा। तुम्हें मैं कभी नहीं जाने दूंगा।"

कुमारी ने छूटते ही रामबाबू को जवाब दिया वह बोली—"यह कैसे होगा दादा कि आप मां और पिता जी सब लोग जांय और उनके साथ कोई भी सेवा करने वाला न हो तो यह कितने दुःख की बात है। आप मुझे नहीं रोक सकते। मैं आपकी पदगामिनी हूं। मुझे क्षमा कीजिये।"

रामबाबू कुमारी को समझाते-समझाते हार गये वह नहीं मानी। कुन्ती भी थक गई गोविन्द बाबू की भी एक नहीं चली। सावित्री ने भी कुमारी को बहुत समझाया परन्तु कुमारी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

वह रात किसी प्रकार बीती और सवेरे गोविन्द बाबू की कोठी के सामने गांव के लोगों की भीड़ लग गई। स्त्रियां रो रही थी बच्चे सिसकते बूढ़े आंसू बहाते और जवान भी अपनी गीली आंखें पोंछते। सबका एक मत था कि अगर रामदादा तीर्थ-यात्रा पर न जांय तो सबका जाना रुक सकता है।

सावित्री सोच रही थी कि अगर कहीं कुमारी बहन रामदादा के साथ चली गई तो मैं अकेली क्या करूंगी मेरी बलाएं कौन लेगा मेरा ख्याल कौन रखेगा मैं कुछ भी नहीं कर पाऊंगी। मेरी सारी योजनाओं पर तुषारपात हो जायगा। वह रो रही थी खूब सुबक-सुबक कर अन्त में जब उसे कोई उपाय नहीं सूझा तो वह कुमारी के गले से लग गई और रोते-रोते बोली—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी मेरा यही निर्णय है। जब धागे अलग-अलग हो रहे हैं। तो मैं अकेली ताना-बाना कैसे लगाऊंगी। कहां नव-निर्माण की बात चल रही थी कहां यह बीच में नई समस्या उठ खड़ी हुई। चलो मैं भी चलती हूं। मैं तुम्हें अकेले नहीं जाने दूंगी।"

कुमारी हैरत में आगई वह समझाने लगी सावित्री को। संगीत चकराया कि यह सब क्या हो रहा है। और अनिल का भीतर ही भीतर घुटने

लगा दम कि कुमारी जा रही है। अब सावित्री भी नहीं रुकेगी इतने बड़े घर में अकेला मैं रहूंगा यह नहीं होगा। मैं किसी को भी नहीं जाने दूंगा।

कुमारी के समझाने-बुझाने का सावित्री पर किंचित मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। अनिल ने जब उसे गृहस्थी की ओर मोड़ना चाहा तो सावित्री ने जोरदार शब्दों में कहा वह बोली—"अगर मुझे रोकना चाहते तो कुमारी बहन भी नहीं जायगी। मेरी समझ में नहीं आता कि इन सब लोगों को हो क्या गया है। भजन और पूजन इन सबसे पहले है काम। यह जीवन संग्राम है जो इससे लड़ता नहीं उसका जीना व्यर्थ है। मानव धर्म का सिद्धान्त यह कहता है कि आखिरी श्वास तक परिस्थितियों से लड़ो। जिन्दा रहना है तो काम करो समय को व्यर्थ न गवाओ। समझे मुझे रोकने का तुम्हें कोई हक नहीं है पहले कुमारी बहन को मना करो।"

अनिल असमंजस में पड़ गया वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा न जाने क्या सोचने लगा। संगीत उसके पास बुत बना खड़ा था। वह कुछ कहना चाहता था लेकिन उसकी जबान नहीं खुल रही थी वह अपने में सर्वथा असमर्थ था। भीड़ में कांव-कांव मची थी लोग अपनी कह रहे थे। रामबाबू बुरी तरह खीझ गये वे वर्तमान परिस्थिति का अध्ययन गहराई से करने लगे। कुछ क्षण के लिये उन्होंने अपनी आंखें मूंद लीं।

●

३४

पूस की धूप छत पर फैल रही थी वह धीरे-धीरे उतर रही थी छज्जे से आंगन की दीवार पर। ठंडी सर्दी भरी हवा थी आज चिड़ियां नहीं

फुदकतीं वे चीं-चीं नहीं करतीं जैसे उन्हें भी सन्ताप था कि कुमारी आदि सब लोग तीर्थ पर जा रहे हैं।

संगीत आगे बढ़ा उसने कुमारी की चरण-रज ले अपने माथे से लगा ली फिर शिशु की भांति अधीर होकर बोला—"दीदी मेरे लिये क्या आज्ञा है। मुझे मार्ग प्रदर्शक चाहिये वह कहां मिलेगा? अगर मुझे यह मालूम होता कि दीदी की छाया मेरे सिर पर से हट जायेगी तो मैं कभी आत्मसमर्पण नहीं करता। हम सबको मंझधार में मत छोड़ो दीदी! पार लगा दो तुम्हारे जाने से हम अनाथ हो जायंगे अनाथ।"

यह कह रोते-रोते संगीत कुमारी के वक्ष से लग गया। कुमारी ने उसका सिर ऊपर उठाया फिर आंचल से आंसू पोंछती हुई स्नेह भरे स्वर में बोली—"पागल हुए हो क्या संगीत तुम पच्चीस-छब्बीस साल के युवक हो तुम्हारे बाजुओं में बल है। तुम स्वयं समझदार हो। जो व्रत अपनाया है उसी पर अडिग रहो मेरा यही कहना है यही आदेश है। रोते क्यों हो हिम्मत से काम लो। हर मुश्किल आसान हो जायगी।"

इसके बाद संगीत बढ़ा आगे वह भरभरा कर रामदादा के पैरों पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोता हुआ किसी तरह बोला—"दादा आप को गांव क्या प्यारा नहीं? जब हम सबने इस बात का बीड़ा उठाया है कि इस गांव की काया पलट कर रहेंगे तो आप नेतृत्व नहीं करेंगे। क्या रखा है तीर्थ पर आप का तीर्थ यह गांव है। हम सब आपके सेवक हैं। क्षमा कीजिये मैं छोटे मुंह बड़ी बात कह रहा हूं। अगर आप अपनी यात्रा रोक दें तो फिर कोई नहीं जायगा।"

रामबाबू संगीत की बातें सुनकर उसका मुंह देखने लगे। सारी भीड़ स्तब्ध थी दादा ने संगीत को उठाया उसके आंसू पोंछे वे कुछ कहें इससे पहले ही संगीत पुनः बोल उठा—"दादा तीर्थों पर जाने की कोई जरूरत नहीं आप मेरी बात मानिये आपके बिना हमारे सभी काम अधूरे रहेंगे। आप नहीं रहेंगे तो हमारे कार्यों को देख कर मुस्करायेगा कौन? हमें आशीर्वाद कौन देगा हमारी टूटी हुई हिम्मत को कौन बंधायेगा? इसके अतिरिक्त आप यह क्यों नहीं सोचते कि अगर आप अपनी यात्रा स्थगित कर देते हैं तो न कुमारी बहन जायगी और सावित्री ही। मां और पिता जी भी नहीं जा सकते। अब समय आ गया है दादा कि इस गांव की बगियों में फूल खिलेंगे फल लगेंगे। यहां

सदा बहार रहेगी दादा आप.........।"

हिचकी भर आयी थी संगीत की आगे नहीं बोल सका। सभी लोग चित्र-लिखे से खड़े थे लोग इस तथ्य पर पहुंचना चाहते थे कि देखें रामदादा संगीत की बात मानते हैं या नहीं।

और रामदादा ने जैसे ही कुछ कहने के लिये मुंह खोला कि तब तक खांस कर गला साफ करते हुए संगीत फिर कहने लगा—"जीवन से उदासीनता का ही दूसरा नाम वैराग्य है। लेकिन मैं वैराग्य के पक्ष में नहीं। मेरा तो कहना यह है जो सुख जिन्दगी को व्यस्त रखने में है वह कर्म-क्षेत्र से दूर भागने में नहीं। जिस घर में वृद्धि नहीं होती वह सूना कहलाता है। जहां स्नेह की छाया नहीं होता वहां आदमी अकेला घबड़ाता है। आप मत जाइये तीर्थ यात्रा पर मेरी बात मानिये मैं बार-बार कहता हूं।"

अब रामबाबू हताश से होकर बैठ गये। उन्होंने माथे पर दोनों हाथ रख लिये और गहरे विचारों में डूब गये। देर बाद जब उनका मौन टूटा तो धीरे-धीरे संगीत से कहने लगे—"अच्छा मान ली तुम्हारी बात संगीत बेटा अब कोई नहीं जायगा तीर्थ यात्रा पर यह गांव ही हमारा तीर्थ है। हम यहीं पैदा हुए और यहीं मरेंगे। एक बार सब लोग प्रेम से बोलो शंकर भगवान की जय और फिर इसके बाद आज की श्रमदान योजना शुरू हो। तीर्थ यात्रा नहीं होगी यह बिलकुल तय है।"

यह सुनते ही सारी भीड़ में हर्ष की लहर दौड़ गई। कोई मुस्कराया कोई हंसने लगा। किसी ने ताली बजायी। और कोई-कोई खुशी से फूला नहीं समाया। कुन्ती और गोविन्द बाबू ने भी अपनी यात्रा स्थगित कर दी। अन्त में सब लोग बहुत हंसे जब कुमारी ने बतलाया कि उसने तीर्थ यात्रा पर जाने का ढोंग इसलिये रचा था क्योंकि वह जानती थी कि उसे कोई नहीं जाने देगा और इस तरह रामदादा भी रुक जायेंगे।

तभी सावित्री ने हंस कर सबको अपनी बात बतलायी कि मैं अपने जाने के लिये जोर इसी लिये दे रही थी ताकि कुमारी बहन न जाय और हमारी योजनाएं सुचारु रूप से कार्य में परिणत हों।

अब तो सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े रामदादा ने दोनों बहुओं की पीठ ठोकी और भीड़ के लोग उनकी सराहना करने लगे।

❁

३५

वसन्त पंचमी का महान पर्व आया। उस दिन गांव भर मे वसन्त मनाया गया। खूब घूम-धाम हुई, गोविन्द वावू की कोठी में बाहर चवूतरे पर एक वड़े से जंगाल में बसंती रंग घोला गया। उसमें किसी की टोपी रंगी गई तो किसी का कुर्ता तो किसी का साफा डुबो दिया गया, तो किसी की धोती रंगी गई, किसी का रुमाल और किसी का दुपट्टा। तीसरे पहर जाफरानी वूटी छानी गई। भंग डालकर ठन्डाई वनी, उसमें केशर घोली गई। सबने ठन्डाई पी, उसके वाद ढोलक वजी, खूब वसंत के गीत गाए गये। पुरुषों और वच्चों में ही नहीं, स्त्रियों में भी आज के दिन वड़ा उछाह था। उन सवने शृंगार किया, वसंती कपड़े पहने, सुहागिनों ने घोविन से सुहाग लिया। घर में कढ़ी वनाई गई और केशर डाल कर खीर।

गांव में रवी की फसल पकने पर थी, सरसों फूल रही थी; गेहूं और जौ में वालियां आ गई थीं, चने में वूट लग रहे थे, कपास फूल रही थी, अरहर के खेत भी चुस्त खड़े थे। आमों में वौर आ-चुका था। जव अमराई में कोयल कुहु-कुहू वोलती, तो वह कानों में अमृत घोल देती। श्रम योजना से गांव के सभी पथ नये हो गये थे, कुछ कंकड़ डाल कर पक्के किये गये, कुछ कच्चे ही रहे। उनके किनारे-किनारे पक्की नालियां वना दी गयीं। हर राह के किनारे मौलश्री, अशोक, आम, जामुन, शहतूत, कटहल और बड़हल आदि के पेड़ लगाए गये थे। उनकी देखभाल होती, खाद डाली जाती और उनकी सुरक्षा का भी पूरा-पूरा प्रवन्ध था।

गांव में सवसे अधिक सफाई पर जोर दिया गया था कि कोई भी व्यक्ति कूड़ा दरवाजे पर न डाले, गांव के वाहर एक गड्ढे में एकत्रित किया जाय, वह बर्वाद भी नहीं होगा, उसकी खाद बनेगी और गांव गन्दगी से वचेगा। यद्यपि पतझड़ की ऋतु वीत चुकी थी, लेकिन फ़िरभी अभी उसका क्रम वन्द नही था। अतः यह योजना बनाई गई कि जो भी सूखे पत्ते-पत्तियां एकत्रित हों, उन्हें भी एक दूसरे गड्ढे में संग्रहित किया जाय, उनकी भी खाद वने और पेड़-पौधों में काम दे।

इसके अलावा सावित्री ने गाँव भर में एलान कर दिया कि गोवर

का बहुत कम अंश कण्डों तथा उपलों के रूप में खर्च किया जाय। शेष सारा गोबर एकत्र करके कूड़े व पत्तियों की भांति गांव के बाहर एक गड्ढे में डाल कर सड़ाया जाय। उसकी खाद बहुत ही अच्छी बनेगी। गांव के अधिकांश लोग घरों में सरसों या रेड़ी का तेल दिये में जलाते, लालटेनें बहुत कम थीं। इसके लिए कोशिश करके राम बाबू ने गांव में मिट्टी के तेल की एक दुकान खुलवायी। घर-घर में कुप्पी और लालटेनें जलने लगीं। अब रात में रोशनी का प्रबन्ध था। राहों में प्रकाश रहता। इन सब कामों के लिए वहां की जनता ने अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया था। जिसकी जितनी श्रद्धा थी, उतना उसने चन्दा दिया। कोषाध्यक्ष बनाया गया संगीत को। सबसे अधिक चन्दा राम-बाबू ने दिया, फिर भला गोविन्द बाबू उनसे पीछे क्यों रहते।

गांव में एक जन-हितकारी समिति बनाई गई। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति उसका सदस्य बना। उस समिति का काम था कि लोगों की शिकायतें सुनना और उनकी तकलीफें दूर करना। यह समिति भी सहयोग के नाम पर चन्दा देती और उसे जनता के आवश्यक कार्यों में व्यय करती। मवेशियों की सफाई का भी बहुत ध्यान रखा जाता, ताकि वे सुन्दर व स्वस्थ रहें। उनके उपचार के लिए फिलहाल एक घरेलू दवाखाना खोला गया, जिसके लिए यह योजना थी कि आगे चलकर इसी में एक डाक्टर की नीव कर दी जायगी।

रामबाबू ने गांव के एक बूढ़े वैद्य को कमरे में बैठाया उसका नाम गोपालपुर औषधालय रक्खा। सरकारी अस्पताल खुलवाने के लिए भी जिला-परिषद में प्रार्थना-पत्र दिया गया था। डाकखाने के लिए भी अर्जी दी जा चुकी थी। इसके अतिरिक्त सावित्री और संगीत की यह भी योजना थी कि कोई भी खेत कभी खाली नहीं रहेगा, सब्जी और फल बाजार से नहीं खरीदेंगे यह सब वस्तुयें गांव ही में उगायी जायेंगी और जो आवश्यकता से अधिक हो उसे बाजार में उचित मूल्य पर बेचा जाय, ताकि लोगों को चार पैसे की आम-दनी भी हो जाय।

पुराने समय में कपास घरों में ओटी जाती थी। बिनौले अलग किए जाते थ। कुमारी ने इस प्रथा को पुन. जाग्रत किया, उसने एक बार सभा में अपना वक्तव्य दिया कि—"कपास को बेचो मत, उसे अपने इस्तेमाल में लाओ बिनौले अलग कर लो, वे ढोरों के काम आयेंगे। उनका तेल स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है, हर घर में चर्ख़ा चलना चाहिए। घर में सूत कातो, हथ-

करघा चलाओ फिर देखना किसी के पास भी कपड़ों की कमी न रहेगी। अपना काम स्वयं करो, किसी का भी सहारा न लो। जब हर आदमी अपने पैरों पर खड़ा होगा तो न कोई भूखा रहेगा, न कोई नंगा।"

यही नहीं कुमारी ने दस्तकारी पर बहुत जोर दिया। उसने कहा कि "दरियां बुनों, कालीन बनाओ, यह अपने देश का पुराना उद्योग है। इससे शहर का पैसा गांव में आयेगा, और लोगों को पैसे की तंगी कभी न होगी। खजूर की चटाइयां और पंखे बनाओ। ढाक के पत्तों के दोने और पत्तल बनाओ। इसी तरह के छोटे छोटे बहुत से काम हैं। गांव का बच्चा-बच्चा लग जाय इसी की मांग है, आजकल इस देश की। बच्चे भी तकली से सूत कातें। सब लोग मिलकर तिरंगे झंडे की लाज रखें, यही भारतीयता है और यही हमारा राष्ट्र धर्म। लोगों को लग रहा कि अब उनका दरिद्र दूर हो जायगा। एक दिन उनके गांव में कंचन बरसेगा। जहां संगठन है वहां क्या नहीं हो सकता, जहां सहयोग का बल हो वहां पत्थर भी पानी में तैरने लगता है।

संगीत के साथियों का खाना गोविन्द बाबू की कोठी में होता। अनिल अब गांव में ही था उसकी दूकान बन्द पड़ी थी। उसका जब भी कभी जाने का मन करता तो कभी संगीत रोक लेता तो कभी सावित्री। इस बार जब वह चलने को हुआ तो कुन्ती ने उसे मना किया वह बोली—"होली का त्योहार सिर पर आ गया है। रुक जाओ अनिल, पर्व करके जाना।"

अन्त में विवश होकर अनिल को रुकना पड़ा।

गाँव में नित्य नई योजनायें जन्म लेती, वे कार्य रूप में परणित की जातीं। इससे सबको महान हर्ष होता। निकट वर्ती गांव के लोग तमाशा देखने आते। गोपालपुर में नयी दुनियाँ बस रही है, और इस दुनियां के नये लोग गांव के अंधकार को दूर भगा रहे हैं। प्रजा तंत्र का जीता-जागता रूप गाँव में दिखलाई पड़ रहा है। हर आदमी आजाद है, हर एक को अपना अपना हक प्राप्त है, हर आदमी मेहनत करता है, सबमें सहयोग की भावना है।

गांव के महाजन की जान सूख रही थी कि अब उसका धन्धा गया। लोग उससे रुपया उधार नहीं लेंगे। क्योंकि अब किसी की भी जरूरत नहीं रुकेगी। गोपालपुर के लोग अपने पैरों पर खड़ा होना सीख गए थे, जन-हितकारी समिति से लोगों को काफी लाभ हो रहा था। इसके अतिरिक्त गांव में एक सहकारी बैंक खोला गया जिसका नाम रखा गया संगम कोष। इसमें

यह नियम था कि गांव का प्रत्येक व्यक्ति महीने में, या दिन में जितना कमायेगा उसका एक चौथाई अंश वह संगम कोष में अवश्य जमा करेगा। यह धन राशि प्रत्येक के काम आयेगी—जैसे शादी-व्याह मौत या बीमारी। किसी को भी कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस संगम-कोष पर गांव के प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार होगा।

अब नियम बन गया था कि हर तीसरे दिन गांव में सभा होती, जिसमें प्रस्ताव रखे जाते, उन पर बहस होती, योजना बनती। तत्पश्चात योजना को जल्दी ही काम के रूप में बदल दिया जाता। नित्य श्रमदान होता। इसके अतिरिक्त लघु उद्योगों पर काफी ध्यान दिया जा रहा था।

राम बाबू को लगता कि भविष्य की गोद में एक चमकता हुआ तारा है जो एक दिन इस गांव के सिर का मुकुट होगा। वे तीर्थ यात्रा पर नहीं गये, वरना यह सौभाग्य उन्हें नहीं मिलता, वे वंचित ही रह जाते।

३६

अनिल होली के कई दिन बाद शहर गया। लखनऊ पहुंच कोशिश कर उसने दूकान बेच दी। धन्धा खत्म कर दिया और उस रकम में से आधी तो जमा कर दी संगम कोष में। आधी जनहितकारी समिति को दे दी। उसने लखनऊ का मकान भी छोड़ दिया। सामान उठकर गोपालपुर चला आया अब लखनऊ का कोई सिलसिला नहीं रह गया। अनिल दत्तचित्त हो गांव के निर्माण में लग गया इस वर्ष रबी की फसल बहुत अच्छी हुई थी किसान झूम-झूम उठते थे जब अन्न से लदे अपने खेतों को देखते।

खेत कटने लगे । खरबूजा ककड़ी, और तरबूज बो दिये गये । हर घर की वाड़ी में सब्जियों के पेड़ पौधे लगाये जाते । इस तरह चन्द ही महीनों में गाँव का चोला ही बदल गया । लोग वहां के निवासियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते ।

इस तरह धीरे-धीरे एक साल बीत गया । गांव गोपालपुर ऐसा हो रहा था मानो कि वह गांव नहीं कोई सहकारिता की बस्ती थी और वहां सभी सहयोगी बन्धु निवास करते । क्या नहीं होता गोपालपुर में वहां फलों की बहुतायत थी । शाक तरकारी की रेल-पेल मची रहती । दूध-दही भी कम नहीं होता । सबके पास एक न एक जानवर था । कोई दूध-दही और घी न मोल खरीदता और न बेचता । सबको यह वस्तुएं प्राप्त थीं किसी के लिये दुर्लभ नहीं । संगीत और अनिल के प्रयत्न से गांव में डाकखाना खुल गया था । सरकारी अस्पताल बन गया पुस्तकालय भी खोला गया वहां-सार्वजनिक वाचनालय एवं पुस्तकालय । गांव से आलस दूर भाग गया था और गरीबी की टूट गयी थी कमर । वह शान्ति, सहयोग और समाई को देख कर दूर जा रही थी ।

इसके अलावा गांव में रचनात्मक कार्य खूब हुए थे । कमजोर मकानों को गिरा दिया गया । उनकी जगह और बने । मकान कच्चे ही थे लेकिन उसमें धूप और हवा का उत्तम प्रबन्ध रखा जाता । घर-घर में चर्खा चलता सूत काता जाता । गांव में कोई भी आदमी बेकार नहीं था । यह गांव एक आदर्श गांव के नाम से पुकारा जाने लगा लोग बड़े आदर से गोपालपुर का नाम लेने लगे ।

समय आया वह गांव पुरस्कृत हुआ कृषि मंत्री के द्वारा और वहां के विकास के लिये सरकार ने अनुदान लम्बी रकम दी तब वहां ट्यूब वेल बने और भी कई उद्योग खुले उस गांव की नीति अपनाने लगे पड़ोसी गांव भी क्यों कि गोपालपुर के लोग अब कर्ज से मुक्त थे उन्हें खाने-पहनने की कमी नहीं थी वे दूसरे के आगे हाथ नहीं पसारते । खुद दूसरों की सहायता करते थे । छब्बीस जनवरी गणतंत्र दिवस वाले दिन गोबिन्द बाबू की कोठी से भारी जुलूस उठता बच्चा-बच्चा हर्ष मनाता रात को रोशनी होती लोग गर्व पूर्वक देखते । सावित्री मार्च का बिगुल बजाती कुमारी कन्धे पर बन्दूक रख कर चलती रामदादा बैठते रथ पर अहिंसा का उपदेश उठा हुआ उनका दाहिना हाथ होता उस दिन

वहां खूब उछाह होता। ऐसे ही पन्द्रह अगस्त को संगीत झंडा रोहण करता। उस दिन भाषण होता कुमारी अनिल और सावित्री का। गांव में रामलीला होती। प्रति वर्ष नित्य वहां बाजार लगती धीरे-धीरे जानवरों का भी क्रयविक्रय होना लगा वहां। वह गांव धीरे-धीरे एक दिन गुड़, कपास, तथा अनाज की मण्डी बन गया इस तरह प्रजातंत्र का पूर्ण सुखी गांव था वह। वहां किसान बरसात के सहारे ही नहीं बैठे रहते। सिंचाई के पुराने साधन जैसे रहट, ढेकुली, बेड़ी और कुआं अब भी प्रयोग में लाये जाते हैं। उनके अलावा काफी मात्रा में ट्यूववेल बन चुके थे। नहर से भी काटकर एक वम्बा लाया गया था गांव तक। खाद भरपूर डाली जाती खेतों में और वह भी अच्छी किस्म की तभी तो गेहूं में बड़ी-बड़ी बालियां आतीं दानों से भरी चने प्रचुर मात्रा में होते मकई के दाने बड़े-बड़े सोने के मोती जैसे लगते भुट्टों का भी आकार बड़ा होता। ज्वार का भुट्टा लगता जैसे चांदी घुघुरूओं से लदा बाजरे की बालियां खूब ठसी होतीं। यही नहीं जानवरों के लिये चारा इतना पैदा होता कि वह साल भर खर्च किये नहीं चूकता। बीज के लिये कोई भी किसान गल्ला नहीं खरीदता जनहितकारी समिति सबको बीज देती थी। गांव के बाहर पशुओं चरागाह के लिये उत्तम प्रबन्ध किया गया। वहां घास बोयी जाती, काटी जाती। उस जमीन में भी खाद डाली जाती। जनहितकारी समिति के सदस्य गांव में भ्रमण करते कि कहीं गन्दगी तो नहीं है। किसी ढोर को बासी पानी तो नहीं पिलाया जा रहा।

इस तरह सब कुछ मिला कर पूरे का पूरे गांव खुशहाल था। वहां के लोग निरोग रहते उन्हे कोई भी व्याधि नहीं सताती उनमें उमंग रहती और उछाह उत्साह का तो उनमें अभाव ही नहीं था। वे सब गांव की सम्पत्ति को अपना धन समझते उसकी सब प्रकार सुरक्षा और सुव्यवस्था करते यही। कारण था कि उनका गांव आदर्श कहलाता और वे सब सम्मान की दृष्टि से देखे जाते।

⊙

३७

कुमारी और सावित्री का दोनों का निराला संसार बस रहा था यह संसार नया नहीं पुराना था। परिवर्तन ने इसमें अपने सब रंग भरे तभी तो गांव इन्द्रधनुष बन गया। वहां की जनता खुशी के गीत गाती वह अपनी मेहनत पर भरोसा रखती और उसका विश्वास बन गया था कि परिश्रम और प्रयत्न कभी बेकार नहीं जाता। सावित्री का पारिवारिक जीवन पूर्णतया सुखी था। कुमारी ने उसका प्यार का नाम रख दिया सावो। वह उसे सावो कह कर पुकारती तो अशोक कहता मां। अनिल उसके पीछे-पीछे डोलता वह उसका नाम लेती और कभी जब बहुत प्रसन्न होता तो उसे नेता जी कह कर बुलाता। संगीत उसे बहन कहता। वह छोटी बहू के नाम से पुकारी जाती। सास ससुर और रामबाबू ने उसे छोटी बहू कहते।

कुमारी वह अपने में सर्वथा सन्तुष्ट थी। उसे भगवान ने जनसेवा का अवसर दिया था यह उसकी सबसे बड़ी हाबी थी। सारे गांव का दरिद्र दूर हो गया। उस धरती का भाग्य उदय हुआ तभी तो मंच पर खड़ी हो कुमारी लोगों से कहती थी कि अपने भाग्य का मनुष्य स्वयं ही निर्माता है। जिसके मस्तिष्क में सोचने की शक्ति है। जो परिश्रम कर सकता वह पराधीन कभी नहीं रहेगा। वह अपने पैरों पर खड़ा होगा।

कुमारी की ऐसी तथ्यपूर्ण बातों का जनता पर बहुत बड़ा असर पड़ता बुड्ढों में जोश आ जाता। उनकी मुर्दा नसों में जिन्दगी बोलने लगती। रामबाबू जब अपनी मित्रमण्डली में बैठते तो उनके कान थक जाते अपने घर-वालों की तारीफ सुनते-सुनते। वे पाते कि जो लोग कल तक छोटी बहू सावित्री की निंदा करते थे वे आज उसके गीत गाते हैं। यह दुनियां किसी की नहीं भलाई और बुराई उसके दो पहलू हैं। मनुष्य जब नेकी करता है तो उसे यश मिलता है। और बदी करने वाला तो बदनामी के हाथों बिकता ही है। बदनामी जितनी सस्ती बड़ाई उतनी ही मंहगी। दुनियां में दोनों के द्वार खुले हैं एक ओर पाप है दूसरी ओर पुन्य। हां पुन्य के पथ पर चलने के लिये कष्ट सहना पड़ता है और पाप के हाथों जब अपना ईमान बेच देता है। इन्सान तभी वह बदनाम होता और दुनिया थू-थू करती है।

कुमारी को यह चिन्ता थी कि वह अगली सहालग में वह संगीत का व्याह कर दे किन्तु वह इसके लिये तैयार नहीं था उसने कहा--"मेरा व्याह गांव की योजनाओं के साथ हो चुका है। दीदी मुझे आशीर्वाद दो मैं अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर चुका हूं। हमारा कार्य क्षेत्र समाज है मैं समाज सेवी हूं। त्याग में जो सुख हैं दीदी वह तपस्या में भी नहीं। आदमी जब स्वतंत्र होता है तभी कुछ पाता। अब व्याह होगा अशोक का तब इस घर में वहू आयेगी।"

सबने संगीत को बहुत समझाया लेकिन वह व्याह के लिये राजी नहीं हुआ। इससे गांव में उसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया। सांझ समय जब ठाकुर द्वारा में भगवान श्रीकृष्ण की आरती होती प्रसाद बंटता उसके बाद घर के बड़े बूढ़ों की सभा जुड़ती आपस में बातें होतीं। उनमें कुन्ती भी होती शामिल वह रामदादा से कहती कि मैं पहले ही कहती थी कि हमारी बड़ी वहू देवी है देवी। यह सब कुमारी की ही देन है। अगर वह न होती तो यह सब कुछ न होता।

इस पर गोविन्द बाबू अपनी छोटी बहू का पक्ष लेते वह फौरन ही कहने लगते कि अगर सावित्री न होती तो सत्यवान को पुनः जीवन नहीं मिलता। उसने ही सागर में गोता लगाया सच्चा मोती ढूंढ़ कर लायी जिसे संगीत कहते है। उसने कितने कष्ट सहे जितने गोताखोर सहता है। तव फैसला करते रामदादा वे हंस कर कहते कि 'कुमारी और सावित्री दोनों ही हमारे लिये गर्व की पात्री हैं। यह उन दोनों की ही त्याग तपस्या का फल है। कि सारा गांव उसका लाभ उठा रहा है। ऐसा लगता है कि यह नई दुनिया है और वहां के लोग भी नये-नये हैं।

गोविन्द बाबू अपना पोपला मुंह खोल कर हंस पड़ते। कुन्ती भी दांत निपोर देती। रामदादा मुस्कराते। अन्य लोगों के चेहरे भी खिल उठते फूल की तरह। मानों उन्हें सर्वस्व प्राप्त हो गया हो।